thearyasamaj.org

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् अपघनतो अरावणः।।

आर्य संकल्प

(बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा का मासिक मुख-पत्र)

वर्ष-38 अप्रैल अंक-4

बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा
कार्यालय : श्री मुनीश्वरानन्द भवन, नयाटोला, पटना-4 (बिहार)

thearyasamaj.org

आर्य संकल्प

सम्पादक
रमेन्द्र कुमार गुप्ता
मो. 9334184136

सह सम्पादक
संजय सत्यार्थी
मो. 9006166168
प्रेम कुमार आर्य
मो. 9570913817

सम्पादक मंडल
पं० व्यासनन्दन शास्त्री
श्री बिन्देश्वरी शर्मा
मो. 8544088138

संरक्षक
गंगा प्रसाद
सभा प्रधान

कोषाध्यक्ष
सत्यदेव गुप्ता
स्वत्वाधिकारी एवं प्रकाशक
बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा
श्री मुनीश्वरानन्द भवन
नयाटोला, पटना-800 004
दूरभाष : 07488199737
E-mail_arya.sankalp3@gmail.com
सदस्यता शुल्क
एक प्रति : 15/-
वार्षिक : 120/-

मुद्रक :
जय उमा प्रिन्टर्स
मो. 9430246879

संपादकीय

हे मातृ शक्ति तेरे बिन सन्तान निर्माण असम्भव

हमारी वैदिक संस्कृति में महिलाओं का समाज में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। उनके बगैर स्वस्थ समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। समाज के हर क्षेत्र में सफलता इनके कदम चूमती है। इनके ऊपर सबसे बड़ी उत्तरदायित्व सन्तान का निर्माण करना होता है। साथ ही दो कुलों की प्रतिष्ठा इन्ही के द्वारा स्थापित होती है। इनके आँचल में व्यक्ति का सौभाग्य छिपा होता है। ये जैसा चाहे संतान को बना सकती है। विदुषी माता मदालसा इसके प्रबल प्रमाण हैं। शतपथ ब्राह्मण भी माता को प्रथम गुरू कहकर सम्बोधित किया है। क्योंकि बालक के अन्दर ज्ञान का अंकुर सबसे पहले माँ के द्वारा ही प्रस्फुल्टित होता है।

बच्चा जन्म लेता है तो दो प्रकार का ज्ञान लेकर धरा पर आता है। पहला स्वाभाविक ज्ञान और दूसरा नैमितिक ज्ञान। स्वाभाविक ज्ञान भी इतना ही होता है कि जन्म लेते ही बच्चा रोता है और रोने के बाद माँ अपने छाती से लगाकर जब दूध पिलाती है तो बच्चा माँ के स्तन से दूध खींचता है। बस! इसी दो ज्ञान को स्वाभाविक ज्ञान कहा जाता है। जहाँ तक नैमितिक ज्ञान की बात है वह माता द्वारा ही सबसे पहले बच्चे को दिया जाता है। जो माता विदुषी होती हैं उनके द्वारा जो ज्ञान दिया जाता है उससे संतान ओजस्वी और तेजस्वी बनकर संसार में यश को प्राप्त करता है।

सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय समुल्लास में मानवता रक्षक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने उद्घोष किया कि " वह माता धन्य है कि जो गर्भाधान से लेकर जब तक पूरी विद्या न हो, तब तक

thearyasamaj.org

आर्य संकल्प

-: सूची :-

क्रम	विवरण	पृष्ठ संख्या
1.	सम्पादकीय	
2.	वेद मंत्र	1
3.	वेद-प्रवचन	2
4.	संस्कारों का महत्व	3
5.	संस्कारों के सन्दर्भ में	11
6.	हमारा सर्वस्व	19
7.	महर्षि दयानन्द	24
8.	अंधविश्वास	27
9.	समाचार	32

इस पत्रिका में दिये गये लेख लेखकों के अपने विचार हैं, इससे सम्पादक का कोई सम्बन्ध नहीं है ।

अप्रैल

कल्याणकारी मार्ग पर ही चलें

स्वास्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि।।

(ऋग्वेद 5/51/15)

पदार्थ- हे परमेश्वर! आपकी कृपा से हम (सूर्य-चन्द्रमसौ इव) सूर्य-चन्द्रमा के समान (स्वस्ति) कल्याणकारी (पन्थाम्) भागों के (अनु, चरेम) अनुगामी हों और हम (जानता) ज्ञानी-विद्वानों के साथ (पुनः) वार (सं गमेमहि) सत्सड.ति करें ।।

भावार्थ- सब मनुष्यों को सूर्य के प्रकाश, ऊष्मा, ऊर्जा और नियमबद्धता तथा चन्द्रमा के प्रकाश, शीतलता एवं नियमबद्धता, आदि गुणों से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये तथा सदैव दानी, अहिंसक और विद्वानों की ही संगति करनी चाहिये; कृपण, हिंसक और मूर्खों की नहीं।

काव्यरूपान्तरण-

सूर्य चन्द्र की भाँति जगत् में,
सखु-पथ के अनुगामी हों।
ज्ञान और निज शुभ कर्मों से,
सुख पावें जग-नामी हों ।।1।।
दानी रक्षक विद्वानों का,
साथ सदा जग में पावें।
हे परमेश्वर ! इस जीवन में,
शुभ कर्मों के पथ जावें ।।2।।

डॉ. वेद प्रकाश, मेरठ

■

thearyasamaj.org

वेद-प्रवचन

य एक इत्तमु ष्टुहि कृष्टीनां विचर्षणिः। पतिर्जज्ञे वृषक्रतुः

(ऋग्वेद 6/45/16)आचार्य ज्ञानेश्वरार्य, रोजड़

शब्दार्थ :- कृष्टीनाम् = मनुष्यों को तो **य एक इत्** = जो एक ही है निश्चय से **विचर्षणिः**:- सर्वद्रष्टा **वृषक्रतुः** = सर्वशक्तिमान् **पति** : पालक, रक्षक **जज्ञे** = हुआ था , है और होगा **तम्-उ** = उसकी ही तू निश्चय से **स्तुहि** = स्तुति कर।

व्याख्या :- हे मनुष्यों! तुम केवल उसी एक परमात्मा की स्तुति- प्रार्थना-उपासना करो जो कि समस्त ब्रह्माण्ड के कण-कण में व्यापक होकर सब मनुष्यों के मन, वाणी तथा शरीर से किये जाने वाले कर्मों को प्रति पल देख रहा है, सुन रहा है, जान रहा है। जो परमेश्वर सर्वदा तुम्हारे अंग-संग है, वह न कभी अलग था, न भविष्य में अलग होगा।

उस महान् सर्वशक्तिमान् परमेश्वर से बड़ा मनुष्यों का कोई भी हितैषी नहीं है, उससे बड़ा रक्षक भी नहीं है और मित्र भी नहीं है। वही मनुष्यों के अन्तःकरण में विराजमान होता हुआ सतत मार्गदर्शक बनता है, वही हमारा पालक है। संसार जड़ और चेतन पदार्थ जिनसे हमारे पालन-पोषण-रक्षा होते हैं वे सभी उसी निराकार परमेश्वर ने बनाये हैं।

माता, पिता, भाई, बन्धु, मित्र, गुरु, आचार्य, राजा इत्यादि जो भी मनुष्य तनधारी हमारी रक्षा करते हैं, पालन करते हैं उन सब को शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, बल, उत्साह, प्रेरणादि साधन वही सर्वव्यापक परमेश्वर ही प्रदान करता है।

जिन वृक्ष, वनस्पति, कन्द-मूल-फल, औषधि, अन्नादि तथा पशु, पक्षी, कीट, पतंगादि प्राणी तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश आदि भूत तथा भूतों से बने पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रादि ग्रह, उपग्रह, नक्षत्रादि पदार्थों से हमारे जीवन की रक्षा होती है उन्हें भी उसी सर्वव्यापक परमेश्वर ने ही बनाये है। यदि ईश्वर उन पदार्थों को, साधनों-उपसाधनों को बनाकर न दे तो ये जड़-चेतन पदार्थ हमारा कुछ भी उपकार नहीं कर सकते ।

इसलिये हे मनुष्य! उस सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, न्यायकारी, कर्मफलदाता परमेश्वर को छोड़कर सांसारिक मनुष्य जो धन से, बल से, विद्या से, प्रतिष्ठा से, यश से प्रसिद्ध देखे जाते हैं उनकी स्तुति-प्रार्थना-उपासना न करो क्योंकि वे सभी मनुष्य ईश्वर की तरह सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वद्रष्टा, सर्वसामर्थ्यवान् नहीं है, सर्वात्मा हितैषी नहीं है, उनकी शक्ति, ज्ञान, बल, साधनादि सीमित है। वे विकट परिस्थितियों में मनुष्यों को रोता, विलखता, तड़पता हुआ देखकर भी छोड़ देते हैं। वे हमारी पूर्ण रक्षा नहीं कर पाते हैं, वे हमारे पूर्ण दुःखों को दूर नहीं कर पाते है, वे हमारी सम्पूर्ण भावनाओं को जान नहीं पाते है, अज्ञान, अभाव, अशक्ति के कारण हमारे साथ अन्याय भी कर देते हैं। मिथ्या धारणाएँ भी बना लेते हैं, संशय भी कर लेते हैं, इनसे ईर्ष्या-द्वेष भी करते हैं।

इसलिए जो कभी भी हमारा साथ नहीं छोड़ता, जो हमारी समस्त भावनाओं को जानता है, जो सच्चा मार्गदर्शक है, पालक है, पोषक है, पूर्ण हितैषी है, उसी की हम स्तुति- प्रार्थना-उपासना करेंगे तो हमें सफलता मिलेगी अन्यथा नहीं। ●

thearyasamaj.org

संस्कारों का महत्त्व

पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय

प्रत्येक समाज में रीति-रिवाज

जनता की भाषा में संस्कार उन भिन्न-भिन्न कृत्यों का नाम है, जो किसी व्यक्ति की जीवन में समय-समय पर हुआ करते हैं। इन कृत्यों के द्वारा व्यक्ति का सम्बन्ध समाज से हो जाता है। इस प्रकार के रीति-रिवाज सभी स्थानों और सभी समाजों में पाए जाते हैं, चाहें उनमें थोड़ी बहुत विभिन्नता हो। संसार में ऐसा कोई समाज नहीं मिलेगा जहाँ इनका प्रचलन न हो।

इनमें तीन संस्कार तो विशेष रूप से पाये जाते हैं:-

1. नाम का महत्व

जब बालक जन्म लेता है उसका एक विशिष्ट नाम रक्खा जाता है। उसी से उसका सम्बोधन होता है। माता-पिता तथा अन्य सम्बन्धी उसी नाम से उसको पुकारते हैं। बिना नाम के समाज में उसका रहना सम्भव नहीं है। यदि वह व्यक्ति समाज का एक सदस्य न होता तो उसके नाम की आवश्यकता ही न होती। समाज में नाम के बिना उसका जीवन दूभर हो जाता है, इसलिए व्यक्ति और उसके नाम का पारस्परिक सम्बन्ध है। एक प्राणी दूसरे प्राणी को एक नाम से सम्बोधित करता है। व्यक्ति के समान हर वस्तु का भी एक नाम रखा जाता है। किसी को घोड़ा, किसी को बैल, किसी को गदहा, किसी को नदी, किसी को पहाड़। इस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार के नाम का नामकरण हो जाता है। इनमें से कुछ नाम जातिवाचक हैं, कुछ व्यक्तिवाचक। हर वस्तु और हर क्रिया को एक भिन्न रूप से सम्बोधित करते हैं। इस प्रकार भाषा का निर्माण हुआ। भाषा में लाखों नाम बन गए।

प्रकृति नामकरण को बाध्य करती है

नामकरण हर जाति और हर धर्म में पाया जाता है। इससे प्रतीत होता है कि प्रकृति हर व्यक्ति का नामकरण करने पर बाध्य करती है। व्यक्ति अशिक्षित रह सकता है, पर वह सम्भव नहीं कि उसका नाम न रक्खा जाए। इस्लाम धर्म की पवित्र पुस्तक कुरान में लिखा है कि- जब खुदा ने आदम को पैदा किया तो सबसे पहले नाम सिखाए। नाम से तात्पर्य है भाषा से, क्योंकि भाषा भिन्न-भिन्न नामों का एक समूह है। कुरान में लिखा है कि-जब फरिश्तों से नाम के विषय में प्रश्न किया गया तो वे इसमें असमर्थ पाए गए। इसलिए आदम फरिश्तों से भयभीत हुआ।

thearyasamaj.org

फरिश्तों के नाम

यह ज्ञात नहीं कि फरिश्तों में विशेषता क्या है? उनके नाम हैं या नहीं? यदि नहीं है तो परस्पर किस प्रकार बात करते हैं? ऐसे समस्यापूर्ण प्रश्नों पर इस्लाम के शिक्षित धर्म-संस्थापकों ने विचार नहीं किया। परन्तु वेद में इन सभी बातों को विशेषता के साथ अध्ययन किया गया है। ऋग्वेद में लिखा है कि ईश्वर को वाचस्पति, बृहस्पति इसलिए कहा जाता है कि न केवल वह संसार को रचने वाला है, बल्कि भाषा का भी निर्माण करने वाला है। ऋषियों को उसने वेदों का ज्ञान दिया, इसका तात्पर्य यह है कि उसने नामों का एक समूह दिया। जिन नामों को विशेष गुणवालों के साथ सम्बन्धित किया जाय, वेद की भाषा में उसको अर्थ कहते हैं।

शब्द-अर्थ-सम्बन्ध

'अग्नि' एक शब्द है जिसको नाम कहा जा सकता है। इस शब्द का अर्थ है वह गर्म वस्तु जिससे हम भोजन पकाते हैं। जिस प्रकार शब्द 'अग्नि' और 'अग्नि' पदार्थ का सम्बन्ध है, उसी प्रकार किसी व्यक्ति और उसके नाम का सम्बन्ध है। इसलिए यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि बालक या बालिका का जन्म लेते ही नाम रक्खा जाए और समाज उस नाम को स्वीकार कर ले। अस्तु, नामकरण के साथ कुछ कृत्य भी किये जाते हैं। माता-पिता केवल लाभ के लिए बालक नाम नहीं रखते, बल्कि समाज और संसार के लिए नाम रखते हैं। यह नाम केवल जीवन से ही सम्बन्ध नहीं रखता परन्तु मृत्यु के उपरान्त भी उसका उपयोग रहता है। हम जानते हैं कि महाराज रामचन्द्र जी अयोध्या के प्रतापी अधिपति थे। महारानी विक्टोरिया इंग्लैंड की महारानी थीं। स्वामी दयानन्द एक महान् ऋषि थे। ये नाम कैसे आवश्यक थे इसकी विशेष व्याख्या आवश्यक नहीं।

2. विवाह का महत्त्व

विवाह दूसरा संस्कार है। यह सर्वसाधारण से सम्बन्ध रखता है, क्योंकि विवाह के उपरान्त एक स्त्री और एक पुरुष मिलकर समाज की सर्वप्रथम इकाई बनाते हैं। व्यक्तियों के समूहों से परिवार का निर्माण होता है और परिवारों का समूह जाति को जन्म देता है परन्तु व्यक्तिगत निर्माण विवाह से होता, जो एक समाजिक धर्म है। इस पर दो प्रकार से विचार किया जा सकता है :-

1. समाज का निर्माण विवाह से होता है।
2. विवाह से जाति का क्रम चलता है।

भिन्न-भिन्न जातियों में भी विवाह से भविष्य का क्रम चलता है। पशुओं में भी इसकी श्रृंखला है, जैसे कुत्ते, बिल्ली आदि। ये विवाह

thearyasamaj.org

नहीं करते। मच्छर-मक्खियों में भी विवाह की प्रथा नहीं, तथापि जन-वर्द्धन नर और मादा के सम्बन्ध से ही होता है। परन्तु संख्या-वृद्धि और समाज-निर्माण एक वस्तु नहीं। यदि विवाह की प्रथा न भी हो, तब भी पुरुष और स्त्री का सम्बन्ध होगा ही और संख्या में वृद्धि होगी ही। परन्तु कुत्ते-बिल्ली समाज का निर्माण नहीं करते। अस्तु, यह प्रथा यदि मनुष्यों में न हो तो इसमें न परिवार बनेगा न समाज बनेगा, न जाति होगी न राष्ट्र होगा। अस्तु, विवाह एक ऐसा संस्कार है जो हर देश और हर धर्म में किसी न किसी रूप में पाया जाता है।

3. शव का संस्कार

तीसरा संस्कार है अन्त्येष्टि अर्थात् मनुष्य के मरने पर कौन-सा कृत्य हो। पशु भी मरता है और मनुष्य भी। सहस्त्रों मच्छर और मक्खी प्रतिदिन मर जाते हैं, पर न उनके शव को कोई उठाने आता है और न दाह ही होता है। वे तो पड़े-पड़े ही सड़ जाते हैं, कोई उनकी चिन्ता तक नहीं करता, परन्तु जब मनुष्यों में से कोई व्यक्ति मर जाता है तो समाज में उसके लिए चिन्ता प्रकट की जाती है। उसके लिए कुछ कृत्य किये जाते हैं। उस समय यह भी विचार किया जाता है कि जिस आत्मा का इस शरीर से सम्बन्ध रहा वह नष्ट नहीं हो गई, आत्मा केवल शरीर को छोड़कर चली गई है। कहाँ गई? इसका ज्ञान नहीं। कहीं भी हो वह नष्ट नहीं हुई। उसका सम्बन्ध इस शरीर से है। केवल सम्बन्ध टूट गया है। यह वही प्यारा शरीर है जिसके साथ हम इतने दिनों से प्रेम करते रहे हैं। अस्तु, आत्मा के विलीन होने पर भी उसके शव के साथ प्रेम और आदर के भाव से व्यवहार होता है। यही कारण है कि शव का अन्तिम संस्कार किया जाता है।

हम यह वर्णन कर चुके हैं कि ये तीन संस्कार इस प्रकार के हैं जो शिक्षित और अशिक्षित दोनों प्रकार के समाजों में पाए जाते हैं। इन प्रथाओं के अतिरिक्त भिन्न-भिन्न जातियों, भिन्न-भिन्न देशों और भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों में विशिष्ट पद्धतियाँ पाई जाती हैं।

हमारे सोलह संस्कार

वैदिक धर्म में प्रत्येक व्यक्ति के लिए 16 संस्कारों का विधान है, अर्थात् हर स्त्री और पुरुष के जीवन को 16 भागों में विभाजित किया गया है जिनमें सामाजिक प्रथाओं का कुछ न कुछ चलन होता है। स्वामी दयानन्द ने अपने अमर ग्रन्थ 'संस्कार विधि' में इन संस्कारों की पूरी विवेचना की है।

ये नये नहीं, प्राचीन हैं

इन संस्कारों का स्वामी जी ने निर्माण नहीं

thearyasamaj.org

किया। वैदिक धर्मग्रन्थों में इन संस्कारों का विधान पूर्व से था। स्वामी जी ने उसका अध्ययन किया। इन संस्कारों के महत्त्व पर मनन करने के पश्चात् वे इस परिणाम पर पहुँचे कि हर व्यक्ति के लिए इनका करना आवश्यक है क्योंकि इनसे उनकी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति होती है।

रीति का आत्मिक व मानसिक महत्त्व

हम कह चुके हैं कि संस्कार कुछ प्रथाओं का नाम है पर इनसे यह न समझना चाहिए कि रीति-रिवाजों को कोई अपना महत्त्व नहीं है। विचार कीजिए कि 'रीति-रिवाज' क्या है? जब कोई बालक घर से बाहर जाता है तो अपने माता-पिता को नमस्ते करता है, चरण छूता है और माता-पिता के आशीर्वाद लेते हैं। जब वह बाहर से फिर घर आता है तो फिर माता-पिता के चरण छूता है और नमस्ते करता है। यह एक पारिवारिक पद्धति है। आप प्रश्न कर सकते है कि इस नाटक का क्या महत्त्व है? यदि बालक बिना इस रीति का अनुसरण किये चुपचाप चला जाय और चुपचाप चला आय तो उसके कार्यों में क्या बाधा उपस्थित होगी? नमस्ते करने या चरण-स्पर्श से क्या विशेषता हो जायेगी? ध्यान दीजिए, विचार कीजिए आपको इसका महत्त्व प्रतीत होने लगेगा। जब बालक माता का चरण स्पर्श करता है तो यह केवल शारीरिक क्रिया नहीं है। आत्मिक और मानसिक स्तर पर यह माता और पुत्र के सम्बन्ध का द्योतक है। यह सम्बन्ध इतना कोमल है जिसको शब्दों के द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता, परन्तु इसके महत्त्व का अनुभव करना कठिन नहीं। कुत्ते और बिल्ली भी दूसरे के प्रति प्रेम का प्रदर्शन करते हैं। पालतू कुत्ते नमस्कार नहीं करते पर अपने स्वामी से मिलकर प्रसन्न होते हैं, दुम हिलाते हैं तथा दूसरे प्रकार से अपने अनुराग को प्रकट करते हैं। यदि आपने कुत्ता पाला हो तो आप इसका अनुभव कर सकते हैं। इस दिखावटी रस्म-रिवाज का भी कुछ प्रयोजन है। रीति-रिवाज क्या है? जो स्वभाव होता है वही कलान्तर में रीति-रिवाज का रूप धारण कर लेता है। जब आप निश्चित समय पर कोई कार्य करते हैं जैसे भोजन के पूर्व हाथ धोते हैं जो एक अच्छा काम है, बार-बार इसके करने से स्वभाव बन जाता है। इसी प्रकार यदि समाज में हर व्यक्ति भोजन के पूर्व हाथ धोने लगे तो हम इसके रीति-रिवाज कहेंगे। जितने भी रिती-रिवाजों की विशेषता और महत्त्व का अध्ययन करना चाहिए। रीति-रिवाज एक दिन में निर्माण नहीं होते। हर रीति-रिवाज का एक विशेष इतिहास है। उसके निर्माण में समय लगा

thearyasamaj.org

है और उनको निरन्तर चलाने में दूरदर्शिता तथा बुद्धि का प्रयोग किया गया है। अस्तु, इनकी हँसी करना हमारे पतन का द्योतक है।

संस्कार से क्या तात्पर्य है?

महर्षि दयानन्द जी ने 'संस्कार विधि' में 16 संस्कारों के करने का आदेश दिया है। मनुस्मृति में भी ऐसा ही विधान है। इन संस्कारों की विस्तृत व्याख्या गृहयसूत्रों में मिलती है। इसमें प्राचीन आर्यों के रीति-रिवाजों का वर्णन है। इनमें पारस्कर और गोभिल प्रसिद्ध स्मृतियाँ हैं, कहीं-कहीं संस्कारों में एक-दो रिवाजों की न्यूनता या वृद्धि पाई जाती है परन्तु सिद्धान्ततः वे एक ही हैं, उनमें मौलिक भेद नहीं है।

इनकी संख्या इस प्रकार है -

1. 3 संस्कार जन्म से पूर्व
2. 1 संस्कार मृत्यु के बाद
3. 12 संस्कार जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में ।

जन्म से पूर्व संस्कार क्यों?

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि यदि संस्कारों का जीवन से सम्बन्ध है तो 3 संस्कार जन्म से पूर्व और एक बाद में करने की क्या आवश्यकता प्रतीत हुई? आइये, इस पर विचार किया जाय। जीवन एक भवन और जितना सुदृढ़ और सुन्दर भवन बनाना हो उतनी ही अधिक गहरी और दृढ़ नींव खोदनी पड़ती है। एक मंजिल वाले भवन के लिए बहुत गहरी नींव की क्या आवश्यकता ! एक गज या दो फीट ही पर्याप्त होगी। दो मंजिल वाले भवन के लिए कई गज गहरी नींव बनाते हैं। यदि भवन कई मंजिल वाला होगा तो उसके लिए बहुत गहरी नींव खोदनी आवश्यक होगी। तात्पर्य यह है कि भवन की ऊँचाई का भवन की नींव की गहराई से अधिक सम्बन्ध है।

गहरी नींव वाला भवन चिरायु

आधारशिला क्या है? यह भवन का वह भाग है जो भूमि के अन्दर है और दिखाई भी नहीं देता। इसका सम्बन्ध सारे भवन से होता है। नींव इस प्रकार बनाते हैं कि भूमि के अन्दर की दीवार और बाहर की दीवार एक समान हो। शामियाना या दो-चार दिन के लिए त्रिपाल बांध कर साया बनाना हो तो नींव की क्या आवश्यकता होगी, परन्तु शमियाना तो आँधी के एक झोंके से गिर पड़ता है। ताजमहल के समान दृढ़ भवन तो अनेकों तूफान और झंझावात को सहन करते हुए अपने मस्तक को शान से ऊँचा किये रहते हैं। परिणाम यह निकला की दृढ़ भवन के निर्माण के लिए नींव इतनी गहरी और दृढ़ चाहिए जो उसको भली प्रकार सुदृढ़ रख सके।

thearyasamaj.org

बेल और वृक्ष को देखिए

एक और उदाहरण लीजिए। जितने वृक्ष ऊँचे और विशाल होते हैं उनकी जड़े अधिक गहराई तक भूमि के अन्दर प्रवेश करती हैं। कद्दू या लौकी की जड़ बहुत गहरी नहीं होती इसलिए वह रहती भी एक या दो मास। कोई कद्दू की बेल पचास वर्ष प्राचीन न मिलेगी। जैसी जड़ वैसी ही बेल। परन्तु नीम और पीपल की जड़ बहुत गहरी होती है, इसीलिए वृक्ष लम्बे होते है और दीर्घ आयु वाले। गमलों में लगाए वृक्षों की जड़े कम गहरी होती हैं, वे शीघ्र ही मुर्झा जाते हैं। अच्छी फसल की प्राप्ति के लिए भूमि को उर्वरा बनाना पड़ता है और अच्छे बीजों की खोज की जाती है। जो भूमि अच्छी प्रकार जोती नहीं जाती उसमें अच्छा बीज भी पनप नहीं सकता, और यदि भूमि अच्छी तरह जोती नहीं गई और अच्छा बीज बोया गया तब भी फसल अच्छी न होगी। अस्तु, अच्छी फसल उगाने के लिए भूमि को उर्वरा बनाना चाहिए और अच्छे बीजों का चयन करना चाहिए। इसको कृषि के नाम से सम्बोधित करेंगे। कृषक की योग्यता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है। खुदरौ (स्वयं उत्पन्न होने वाले पौधे) अपने-आप ही बिना बोए उग आते हैं, वे बड़े भी हो जाते हैं, पर उनमें एक क्रम नहीं आता। कृषि-विभाग का कार्य है कि वह कृषकों को बताए कि भूमि को किस प्रकार जोता जाए, बीज किस प्रकार के होने चाहिए और कहाँ से मिल सकेंगे और वृक्षों की सेवा किस प्रकार की जानी चाहिए। इनको आप 'संस्कार' कह सकते हैं।

कृषि-भूमि का संस्कार

कृषकों ने भूमि को उर्वरा बनाया, अच्छे बीजों को उपलब्ध किया, खराब बीजों को फेंक दिया। ये सब कृषक द्वारा किये गये कार्य 'संस्कार' हैं। इसी प्रकार मनुष्य की उत्पत्ति करना सरल कार्य नहीं है। शास्त्रकारों ने कहा है कि मनुष्य प्रकृति का सबसे सुन्दर व्यक्ति है। इससे यह न समझना चाहिए कि सभी मनुष्यों में तमाम प्रतिभा है। प्रायः यह देखा जाता है कि मनुष्य का स्वभाव पशु और पक्षियों के समान होता है। शिक्षित और सभ्य व्यक्ति तथा अशिक्षित और असभ्य व्यक्तियों में अन्तर है। सभ्य समाज में बालक को जन्म देने के लिए कुछ निश्चित नियमों का पालन किया जाता है। असभ्य व्यक्तियों के बालक तो चूहे और बिल्ली के समान बिना सोचे-विचारे जन्म लिया करते हैं।

पशु-पक्षियों के संस्कार

आपने सुना होगा कि सभ्य देशों के कुत्ते तथा अन्य पशुओं को सुदृढ़ और उपयोगी बनाने

thearyasamaj.org

के लिए बड़ा प्रयत्न किया जाता है गाय अधिक दूध देने वाली हो, बैल अधिक बलवान् हों, घोड़े अधिक तीव्रगामी हों। इन सबके लिए 'संस्कार' की आवश्यकता होती है। पशुओं के विशेषज्ञ जानते हैं कि गाय किस प्रकार बच्चा दे? उसका पालन किस प्रकार हो? किस प्रकार उसको रोगरहित रक्खा जाय? सरकार की ओर से पशु-विभाग (veterinary dept.) स्थापित हैं जिसमें विशेषज्ञ डॉक्टर रखे जाते हैं। वे निर्बल गाय और बैल का सम्बन्ध नहीं होने देते। बीमार घोड़ी बीमार घोड़े के साथ नहीं रहने दी जाती है। इनके लैंगिक सम्बन्धों के विशिष्ट अवसर हैं। कुत्तों का पालन करने वाले भी ऐसे ही नियमों का पालन करते हैं। इन सबको आप क्या कहेंगे? ये सब 'संस्कार' ही कहे जायेंगे।

मनुष्य की भूल

आश्चर्य तो यह है कि मनुष्य इतना ज्ञानवान् होता हुआ भी अपने को प्रकृति का सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति सिद्ध नहीं कर पाता। जो कृषक अपने बैलों की वंश परम्परा का ध्यान रखता है वह अपनी संतान के विषय में उतना सावधान नहीं रहता। जो राजा देश के पशु, पक्षी और सारे राष्ट्र का ध्यान रखता है, वह कभी यह सोचने का कष्ट भी नहीं करता कि राज-परिवार के राजकुमारों को किस प्रकार जन्म दिया जाय या किस प्रकार पालन हो। एक कृषक यह नहीं सोचता कि किस प्रकार सुन्दर कृषक उत्पन्न किये जावें। एक पंडित यह कभी स्वप्न में भी नहीं विचारता कि उसकी संतान किस प्रकार उसके समान योग्य और प्रतिभाशाली बन सकेगी। यह सब इस कारण से है कि हमने संस्कारों के महत्त्व को उचित रूप में नहीं समझा है। इसलिए राजाओं की सन्तान अयोग्य होती है क्योंकि कोई राजाओं के सम्मुख शिक्षा देने का साहस नहीं कर सकता। वे स्वयं भाग और राग में इतने डूबे रहते हैं कि न तो उनको उपदेश दिया जा सकता है, न उनका बुराइयों की ओर ध्यान आकर्षित किया जा सकता है। इसलिए हमारे ऋषियों ने यह उपदेश दिया कि सन्तानोत्पत्ति के पूर्व इस प्रकार के नियमों का पालन किया जाय कि अयोग्य सन्तान किसी भी प्रकार उत्पन्न ही न हो सके। कुछ व्यक्तियों की यह धारणा है कि सन्तान की उत्पत्ति स्वयमेव हो जाती है उनके लिए कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता। वे अकस्मात् (by chance) उत्पन्न हो जाते हैं। शिक्षित मनुष्यों के बालक अयोग्य और अशिक्षित व्यक्तियों के योग्य उत्पन्न हो जाते हैं। प्रायः समाज में देखा गया है कि कुछ पवित्र तथा धार्मिक व्यक्तियों की संतान दुराचारी, अधर्मात्मा होती है और इसके विपरीत अयोग्यों की सन्तान धर्मात्मा, शिक्षाविद् होती

thearyasamaj.org

है। यह असम्भव नहीं है, पर इस नियम को दूर तक नहीं ले जाया जा सकता। प्रकृति ऐसा नहीं जिसके हर कार्य नियमों के अनुसार न हों और सब-कुछ अकस्मात् रूप से हो जाया करें। सन्तान को जन्म देना इतना सरल नहीं। यह तो नियमों के ऊपर आधारित है। इसलिए जब कभी इस प्रकार की सन्तान उत्पन्न हो जाय जो अपने माता-पिता के स्वभाव के प्रतिकूल हो, तो उस पर पूर्ण विचार करना चाहिए। यदि कोई भवन पहली वर्षा में ही गिर जाता है तो लोग कहते हैं कि भवन की नींव में कुछ कमी रह गई है या भूमि में कोई ऐसा छेद होगा जिससे पानी भवन की नींव में जाकर उसको खोखला कर देता हो। इसी तरह यह समझना चाहिए कि माता-पिता में कुछ ऐसी कमजोरियाँ रही होंगी। जिसका बालक के जीवन पर प्रभाव पड़ा है। सभ्य तथा विशेषज्ञ इस प्रकार की कमजोरियों और कमियों का पता लगाते रहते हैं। पर असभ्य व्यक्ति 'अकस्मात्' कहकर इस पर पूर्ण विचार नहीं करते।

उन्नत राष्ट्र कितने जागरूक!

हम यहाँ एक उदाहरण देते हैं। इंग्लैंड के लोगों ने यह पता लगाया है कि जो बालक मार्च या अप्रैल में जन्म लेते हैं, उनके मस्तिक में अधिकतर कुछ न कुछ खराबी पाई जाती है। इसका कारण यह बताया जाता है कि मार्च और अप्रैल में जन्म लेने वाले बालकों का गर्भाधान जुलाई या अगस्त में हुआ होगा। उस समय इंग्लैड में अंगूर की फसल होती है और लोगों को अधिक मात्रा में शराब पीने को मिलती है। पुरुष और स्त्री नशे में मस्त होते हैं और इसी मदहोशी में सन्तानोत्पत्ति होती है। इनके नशे का प्रभाव सन्तान के मस्तिक पर होता है। जिस वीर्य से शरीर बनता है उसमें शराब के दुर्गुण सम्मिलित होते हैं और वहीं प्रभाव उनके मस्तिष्क पर जन्म के समय और भावी जीवन में प्रभावित करते रहते हैं। यदि गर्भ धारण के समय सावधानी न बरती गई तो भिन्न-भिन्न प्रकार के रोगों का प्रारम्भ हो जाता है जिसका दुष्परिणाम सन्तान को जीवन-भर उठाना पड़ता है।

इन सब बातों से पता चलता है कि जन्म के पहले होने वाले संस्कारों का जन्म के उपरान्त होने वाले संस्कारों से विशेष सम्बन्ध है।

फारसी का शेर है-

खिश्ते अव्वल गर निहद मेमार कज।
ता सोरैय मे रवद दीवार कज॥

अर्थात् बुनियाद की एक टेढ़ी ईंट दीवार को टेढ़ा बना देगी।

अस्तु, सन्तानोत्पत्ति की तैयारी पूर्व से होनी चाहिए। ●

thearyasamaj.org

संस्कारों के सन्दर्भ में ऋषि दयानन्द

लेखक- डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री, अमेठी

वेद का धर्म

वेद का धर्म वैदिक धर्म है ज्ञान का धर्म है, सत्य का धर्म है, न्याय और प्रकाश का धर्म है। वह हिन्दू धर्म, पौराणिक धर्म, शैव-शाक्त-कापालिक या वैष्णव धर्म नहीं है वह मानव-धर्म है। वेद का 'आर्य' शब्द जाति-वर्ण काल या देश का वाचक नही हैं, वह गुणवाचक है। स्वयं वेदों का 'विजानीहि आर्यान् ये च दस्यवः' (ऋग्वेद 1/51/8) मन्त्र बताता है कि वेद का 'आर्य), दस्यु = डाकू या लुटेरा = शोषक का विरोधी है। वेद की भाषा कभी किसी काल की जनभाषा नहीं रही। जनभाषा 'संस्कृत' रही है। संस्कृत की तरह अन्य सभी भाषाओं में वेद के शब्द हैं। वैदिक भाषा के नियम बहुत ही विस्तृत हैं और इसके शब्द भी यौगिक हैं। संस्कृत भाषा के नियमों में संकोच और शब्दों की प्रवृति रुढ़ि होती गई है अन्य भाषाओं की तरह। आधुनिक भाषाशास्त्री भी भारोपीय भाषा परिवार का मूल वैदिक भाषा को मानते हैं। उनके भाषाविदों का यह सुझाव भी रहा है कि इन्डो-योरोपियन, इण्डो-जर्मनिक या इण्डो-हिट्टाइट के स्थान में इस भाषा-परिवार का नाम आर्य-परिवार रखा जाए। प्रसिद्ध भाषाशास्त्री डॉ. उदयनारायण तिवारी का कहना था कि स्वामी जी का 'आर्य-भाषा' नाम रखना बहुत बड़े अर्थ-गाम्भीर्य और दूरदृष्टि का सूचक था। वेद का परमेश्वरीय नाम 'ओ३म्', धार्मिक कृत्य 'यज्ञ', अभिवादन 'नमस्ते' और श्रेष्ठ सज्जन का नाम 'आर्य' इन शब्दों में व्यापक दृष्टि, अर्थ विशदता, सर्वजन ग्राह्यता और असाम्प्रदायिकता है। इनकी तुलना इसके समानार्थी अन्य किसी शब्द से नहीं की जा सकती।

ऋषि और वेद का अर्थ

यह अच्छी तरह सबको ज्ञात है कि वेदों का सम्बन्ध, द्रष्टृत्व ऋषियों से है- 'साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवः'। अतः वेदों का मर्म या अर्थ ऋषि-दृष्टि से ही उद्घाटित होता है। वैदिक ऋषि-मधुच्छन्दा, वशिष्ठ, वामदेव, ऋषिकाएँ-अपाला घोषा, रोमशा से लेकर परवर्ती ऋर्षि-ऐतरेय, याज्ञवल्क्य, गोपथ, मनु, यास्क पाणिनि और पतञ्जलि तक सभी ऋषियों की वैदिक मान्यताएँ तक हैं उसमें कोई मत वैभिन्न्य नहीं है। वेदों के शब्द यौगिक हैं, उनमें लौकिक इतिहास नहीं हैं, वे सभी सत्य विद्याओं के मूल हैं, धर्म-अर्थ-काम त्रिवर्ग के

thearyasamaj.org

साधक सभी शास्त्रों के वे उत्स हैं स्त्रोत हैं। व्याकरण, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, न्याय, सांख्य, योग, मीमांसा, वैशेषिक और वेदान्त, औपनिषदिक ब्रह्मविद्या, प्राणविद्या, यज्ञीय कर्मकाण्ड, आयुर्वेद, धनुर्वेद, अर्थवेद तथा गान्धर्ववेद और विविध विद्याओं-गणित, राजनिति, सैन्य संचालन, कृषि, व्यापार, भूगर्भ, वनस्पति एवं जन्तु विज्ञान प्रभृति शाखाओं का विस्तार वैदिक ऋचाओं की प्रेरणा से हुआ है। उनमें विद्या, युक्ति, तर्क और विज्ञान के विरुद्ध कुछ भी नहीं है। ऋषियों की यही दृष्टि दयानन्द को भी मान्य है। दुःख है कि वेदार्थ की यह प्राचीन दृष्टि से मेल नहीं खाते। अतः ऋषि दयानन्द उन्हें चुनौती देते हैं। यही कारण है कि ऋषि दयानन्द यास्क से सहमत हैं सायण और महीधर से नहीं। पाणिनि से सहमत हैं भट्टोजीदीक्षित से नहीं। मनु से सहमत हैं 'कुल्लूक भट्ट' से नहीं। व्यास और जैमिनि से सहमत हैं, शंकराचार्य और शबरस्वामी से नहीं। क्योंकि मूलसूत्रकार ऋषियों के ग्रन्थों के व्याख्याकार आचार्यगण बहुधा मूल पथ से भटककर सम्प्रदाय का प्रवर्तन कर देते हैं।

ऋषियों के प्रतिनिधि-'दयानन्द'

स्वामी दयानन्द जिस धर्म के प्रचारक हैं उपदेष्टा हैं, वह वेद का धर्म और ऋषियों का धर्म है। आज का हिन्दू धर्म या पौराणिक धर्म, जिसे सनातन धर्म भी कहा जाता है, दुर्भाग्य से प्राचीन (पुराण का यौगिक अर्थ) या शाश्वत ('सनातन' शब्द का अर्थ) सिद्धान्तों का पोषक नहीं रह गया है। उदाहरण के लिए हिन्दुओं में प्रचलित कर्मकाण्ड पर दृष्टिपात कीजिए।

सन्ध्यादि नित्यकर्म में ३ॐ केशवाय नमः। ३ॐ नारायणाय नमः। ३ॐ माधवाय नमः (नित्यकर्म-पूजाप्रकाश, पृ. 18 गीता प्रेस गोरखपुर, दशम संस्करण, 2053 वि.सं.) ये तीन लौकिक संस्कृत वाक्य बोलकर आचमन किया जाता है। जबकि स्वामी दयानन्द जी ने 'शन्नो देवीरभिष्टय' (यजुर्वेद 36/12) तथा 'अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा' प्रभृति (आश्वलायन गृहयसूत्र 1/24/12,21,22) तीन मंत्रों से क्रमशः सन्धया और अग्निहोत्र में 'आचमन' का विधान किया है। वेदों में भी उच्चावचता की मान्यता के कारण दैनिक संध्या में पौराणिक लोग अथर्ववेद का मन्त्र नहीं बोलते। सन्ध्या में 'अघमर्षण' तथा 'उपस्थान' के मन्त्रों (पूर्वकाल से प्रचलित विधि) को यथावत् स्वीकार करते हुए स्वामी जी ने 'मनसा परिक्रमा' के लिए अथर्ववेद के प्राची दिग् (अथर्व. 3/27/1-6) प्रभृति 6 मन्त्रों का भी विनियोग किया है। ऋषि दयानन्द प्रवर्ति संस्कार की विधि या कर्मकाण्ड में सभी वेदों

thearyasamaj.org

के साथ-साथ ऋषियों के गृहयसूत्र, ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक तथा श्रौतसूत्रों की भी आवश्यक मान्यतायें संगृहीत हैं। सन्ध्या, अग्निहोत्र और संस्कार की पद्धतियों में ऋषि दयानन्द के अतिरिक्त अन्य किसी आचार्य का ग्रन्थ इतना व्यापक नहीं है, जिसमें पूर्व ऋषियों के प्रमाणों का अधिकाधिक ग्रहण करके उसमें सामंजस्य बिठाने का प्रयत्न किया गया हो। दयानन्द से पूर्व संस्कारों की परम्परा द्विजों से संकुचित होकर ब्राह्मण-परिवारों तक सीमित हो गई थी। ब्राह्मण भी अपनी-अपनी वेद शाखा के गृहयसूत्र के अनुसार संस्कार सम्पन्न करा लेते हैं। स्वामी जी ने इस परम्परा को तोड़कर जन साधारण में संस्कारों का प्रचलन कराने के लिए चारों वेदों के गृहयसूत्र के अनुसार (ऋग्वेद का आश्वलायन, यजुर्वेद का पारस्कर, सामवेद का गोभिल तथा अथर्ववेद का शौनक) सम्यक् रूप से आर्ष संस्कार पद्धति प्रस्तुत की। इस प्रकार स्वामी जी सभी ऋषियों और चारों वेदों के प्रशंसक हैं और प्रतिनिधि प्रवक्ता भी। उन्होंने कोई नवीन मत-मतान्तर की स्थापना नहीं की है। उनका संदेश वेदों का संदेश है, ऋषियों का संदेश है, संसार के सभी मनीषियों के संदेशों का सार है।

संस्कार-विधि का वैशिष्ट्य

स्वामी दयानन्द को 'संस्कार-विधि' के निर्माण करने की क्यों आवश्यकता पड़ी? इसका स्थूल रूप से यही उत्तर है कि आर्य जाति में वेदादिशास्त्र-विहित संस्कारों का अभाव देख, ऋषि ने करुणामय मन से इस अधःपतित जाति के पुनरुत्थानार्थ इस ग्रन्थ को लिखा। महर्षि दयानन्द से पूर्व आर्य लोगों में केवल थोड़े से ही संस्कारों का लुप्तप्राय रूप से प्रचार था। 'गर्भाधान' और 'पुंसवन' तो लोगों के लिए स्वप्न हो चुका था। 'सीमन्तोन्नयन' संस्कार का प्रचार केवल स्त्रियों के विधि द्वारा ही प्रचलित था जहाँ तक कि बिना मन्त्रादि के स्त्रियाँ स्वयं कुछ एक फल या मिठाई आदि लेकर गर्भिणी की झोली में डाल देती थीं। 'जातकर्म' का विचार ही न था। स्व-जातियों को बुलाकर लोग स्वयं नाम रखकर 'नामकरण' संस्कार की पूर्ति कर दिया करते थे। 'निष्क्रमन' और अन्नप्राशन' तो किसी को स्मरण भी न था। 'मुण्डन संस्कार' अपूर्ण और अवैदिक रीति से प्रचलित था। 'कर्णवेध' स्त्रियाँ स्वयं या किसी यवन (=मुसलमान) से करा लेती थीं। 'उपनयन' भी अपूर्ण रीति से असमय पर होता था। कुछ लोग तो विवाह-कार्य प्रारम्भ होने पर विवाह-स्नान के समय में यज्ञोपवीत धारण

thearyasamaj.org

करते थे। कई एक देवी मन्दिरों में देवी-देवता के चरणों से यज्ञोपवीत का स्पर्श करके, बिना मन्त्र ही अपनी सन्तान का यज्ञोपवीत करते थे।

उपनयन का फल ब्रह्मचर्य-धारण पूर्वक 'वेदारम्भ' का तो किसी को पता भी न था, फिर 'समावर्तन' के लिए क्या कहा जाय? केवल एक विवाह संस्कार को ही सब संस्कारों से अधिक प्रधानता दी जाती थी। वहां भी बाहय आडम्बर बहुत और विधि का विचार बहुत थोड़ा था। उसमें भी शास्त्र विरुद्ध इतनी कुरीतियाँ थीं कि जिनका पूर्ण रूप से वर्णन किया जाय तो एक भिन्न बन जाए। उन नाम मात्र के संस्कारों में भी ब्राह्मणों ने नवग्रह-पूजन, गणेश-पूजनादि अनेक प्रकार की अवैदिक और अनार्ष विधियाँ चलाई हुई थीं। वेदों में इन ग्रहों की पूजा और गणेशादि की पूजा का वर्णन तो होना ही कहां था, पर आश्चर्य तो यह है कि इनका मूल पारस्कर, आश्वलायन, गोभिलादि प्रसिद्ध गृहयसूत्रों में भी कहीं नहीं मिलता, जो कि संस्कारों के मूल ग्रन्थ हैं, और जिनकी सत्ता से ही संस्कारों की सत्ता है। न जाने फिर इन पौराणिक लोगों ने इस प्रकार की कल्पित बातों को प्रक्षेप इन पवित्र संस्कारों में क्यों किया?

इन 'संस्कार-विधि' ग्रन्थ को पहले महर्षि ने वि.सं. 1932 में लिखा था। फिर 8 आठ वर्ष के अनन्तर आषाढ़ मास वि. सं. 1940 में इस ग्रन्थ का परिमार्जित रूप से शोधन कर द्वितीय संस्करण छपवाया।

अपनी संस्कार-विधि के प्रारम्भ में ही महर्षि दयानन्द लिखते हैं कि -

वेदादिशास्त्रसिद्धान्तमाध्याय परमादरात्।
आर्यैह्यियं पुरस्कृत्य शरीरात्मविशुद्धये॥

(संस्कार-विधि पृ.-3)

अर्थात्- वेदादिशास्त्रों का परमादर से चिन्तन करके आर्यों के इतिहासानुकूल शरीर और आत्मा की शुद्धि के लिए (यह ग्रन्थ रचा है)। 'उपदेश-मंजरी' की व्याख्यान-माला में सातवें व्याख्यान, जो स्वामी जी ने जुलाई 1876 ई. में पूना नगर में दिया था, उसमें 'कर्णवेध' संस्कार का वर्णन नहीं है। वहाँ उन्होंने गृहाश्रम को भिन्न लिखकर संस्कारों की गणना 16 षोडश की है। प्रथम 'संस्कार-विधि' जो 1933 वि. सं. में प्रकाशित हुई थी, उसमें 'कर्णवेध' का वर्णन तो मिलता है, परन्तु वहाँ स्वामी जी ने 'वानप्रस्थाश्रम संस्कार' को भिन्न न मानकर उसे 'संन्यास' के अन्तर्गत माना है।

इन दो परस्पर विरूद्ध बातों का यह उत्तर है कि पहले 1875 ई. में स्वामी जी ने 'कर्णवेध' को बहुत उपयोग न समझा था। क्योंकि इसका

thearyasamaj.org

वर्णन पारस्कर गृह्यसूत्र के कात्यायन परिशिष्ट भाग को छोड़कर अन्य किसी आज तक प्रकाशित गृह्यसूत्र में नहीं मिलता। प्रतीत होता है कि यह बात अनुभव कर उन्होंने इस संस्कार को प्रमुखता नहीं दी थी। यह भी सम्भव है कि इस संस्कार का वर्णन उन्होंने अपने व्याख्यान में किया हो और इसे 'चूडाकर्म-संस्कार' के अन्तर्गत कहा हो, परन्तु नोट करने वाले महाशय ने यह नोट न किया हो। यह भी सम्भव है कि नोट करके भी 'उपदेश मंजरी' में प्रकाशित न किया हो। क्योंकि उसमें व्याख्यानों को संक्षेप रूप में दिया है, विस्तार रूप से नहीं।

कैसे भी हो, यह बात तो सिद्ध ही है कि उस समय में स्वामी जी इस संस्कार को नहीं मानते थे।

इन पूना व्याख्यानों के तीन माह बाद अक्टूबर 1875 में जस स्वामी जी ने संस्कार विधि का प्रथम संस्करण निकाला तो देश में प्रायः सर्वत्र 'कर्णवेध' का प्रचार देख, शास्त्रानुकूल होने से उन्होंने संस्कारमाला में इसे भी स्वीकार किया।

वानप्रस्थाश्रम का भी संन्यासाश्रम में बहुत भेद न जानकर आचार्य दयानन्द ने प्रथम संस्करण में इसे संन्यास के अन्तर्गत माना और गृहाश्रम को मुख्य समझा। परन्तु 1940 वि. सं. (1883 ई.) में जब 8 वर्ष पीछे ऋषि ने 'संस्कार विधि' का द्वितीय संस्करण निकाला, तो उसमें 'कर्णवेध' और 'वानप्रस्थाश्रम' को गृहाश्रम की अपेक्षा अधिक उपयोगी जान भिन्न-भिन्न लिखा।

संस्कार तो स्वामी जी को छोटे-बड़े सदा ही अभिमत थे, किन्तु उनकी मुख्यता और गौणता वे देशानुकूल करते थे। पहिले 1875 ई. के जुलाई मास में कर्णवेध को साधारण जानते थे। अनेक देशों में भ्रमण करते-करते आर्य जाति के प्रत्येक प्रान्तीय द्विजों की रीतियों का पूर्ण रूप से अनुभव प्राप्त करके आठ वर्ष पीछे 1940 वि.सं. में जब उन्होंने संस्कार विधि का द्वितीय संस्करण प्रकाशित किया तो 'कर्णवेध' और 'वानप्रस्थ' को बहूपयोगी जान उन्हें गृहाश्रम की अपेक्षा विशेषता दी। 'संस्कार-विधि' के प्रथम संस्करण में वर्णित गृहाश्रम को द्वितीय संस्करण में विवाह संस्कार के अन्तर्गत किया और संन्यासान्तर्गत वानप्रस्थ को भिन्न लिखा।

संस्कार विधि के द्वितीय संस्करण में जो न्यूनता वा अधिकता हुई है, उसके लिए स्वामी जी महाराज के ही लेख को उद्धृत करते हैं, जो उन्होंने द्वितीय संस्करण की भूमिका में दिया है-

" जो विषय प्रथम अधिक लिखा था

thearyasamaj.org

उसमें अत्यन्त उपयोगी न जानकर छोड़ भी दिया है। और अब की बार जो-जो अत्यन्त उपयोगी विषय हैं, वह-वह अधिक भी लिखा है। इसमें यह न समझ जावें कि प्रथम युक्त न था, और प्रथम युक्त छूट गया, उसका संशोधन किया है।''

स्वामी जी इन वाक्यों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उन्होंने युक्त विषय को छोड़ा नहीं, प्रत्युत द्वितीय संस्करण में संशोधन किया है। ऐसे ही यदि उन्होंने गृहाश्रम को विवाहान्तर्गत और वानप्रस्थ को संन्यासान्तर्गत न मानकर, प्रत्युत उसे स्वतंत्र मानकर द्वितीय संस्करण में यह संशोधन किया तो कोई दोष की बात नहीं।

मनु महाराज यदि पुंसवन, सीमन्तोन्नयन और कर्णवेध संस्कारों का वर्णन स्व मनुस्मृति में नहीं करते तो इसमें मनु महर्षि का अपमान नहीं किन्तु उन्होंने अपने विचारानुकूल विशेषता नहीं दी। और उधर अन्य गृह्यसूत्र कर्त्ता ऋषि इन्हें सर्वत्र ही स्व-सूत्र-ग्रन्थों में विशेषता देते हैं। वे वानप्रस्थ और संन्यास संस्कार का वर्णन नहीं करते। आश्वलायन के अतिरिक्त अन्य गृह्यसूत्रकर्त्ता ऋषियों ने अन्त्येष्टि संस्कार का वर्णन नहीं किया हैं इससे हम ये नहीं कह सकते है कि इसमें गृह्यसूत्रकर्त्ताओं की त्रुटि है। इसका समन्वय यही है कि उन महापुरुषों ने अपने अपने समय में देश-कालानुकूल वेदमूल को लेकर संस्कारों का विधान किया। जैसे प्राचीन काल में ऋषियों ने विधियाँ लिखीं, वैसे ही उन्नीसवीं शताब्दी के सबसे बड़े धर्मसंशोधक वेदत्त्वज्ञाता स्वामी दयानन्द ने भी देश-कालानुकूल जिस-जिस संस्कार की बहुत विशेषता अनुभव की उसे मुख्य और अन्य साधारण संस्कारों को गौण समझकर उन्हें मुख्य संस्कारों के अन्तर्गत किया।

इस प्रकार स्वामी दयानन्द सरस्वती की रचनाओं में 'संस्कार-विधि' का प्रमुख स्थान है। उनके महत्त्वपूर्ण तीन ग्रन्थ 1. संस्कार-विधि 2. सत्यार्थ प्रकाश 3. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका हैं।

प्राचीन ऋषियों ने मनुष्य-जन्म को सुसंस्कृत बनाने के लिए बहुविध संस्कारों की योजना की है। मनुस्मृति में गर्भाधान से लेकर अन्तयेष्टि पर्यन्त चौदह संस्कारों का उल्लेख है। अन्य गृह्यसूत्रों में भी अनेकविध संस्कारों का वर्णन मिलता है। संक्षेप में उन गृह्यसूत्रों के अनुसार संस्कारों की संख्या इस प्रकार है-

आश्वलायन गृह्यसूत्र	13 तेरह
कौषीतकि (शांखायन) गृह्यसूत्र	12 बारह
पारस्कर गृह्यसूत्र	14 चौदह
आपस्तम्ब गृह्यसूत्र	12 बारह
हिरण्यकेशि गृह्यसूत्र	10 दस

thearyasamaj.org

मानव गृह्यसूत्र	13 तेरह
गोभिल गृह्यसूत्र	12 बारह
जैमिनि गृह्यसूत्र	11 ग्यारह
कौशिक गृह्यसूत्र	10 दस
गोपथ ब्राह्मण	11 ग्यारह
मनुस्मृति	14 चौदह

किसी गृह्यसूत्रकार ने वानप्रस्थ तथा संन्यास का उल्लेख नहीं किया। इसका कारण यह है कि ये गृह्यसूत्र गृहस्थ सम्बन्धी कर्त्तव्यों का वर्णन करते हैं अन्यों का नहीं। वानप्रस्थ और संन्यास का गृह-कर्मों से कोई सम्बन्ध नहीं, अतः इनका विधान गृह्यसूत्रों में नहीं मिलता। इन दोनों संस्कारों का विशेष वर्णन ब्राह्मण और स्मृतियों में आता है, और स्वामी जी ने यह संस्कार उन्हीं के आश्रय से लिखे हैं। आश्वलायन और कौशिश गृह्यसूत्र के अतिरिक्त किसी गृह्यसूत्र में अन्त्येष्टि का वर्णन नहीं हैं, किन्तु यजुर्वेद तथा मनुस्मृति में अन्त्येष्टि संस्कार का वर्णन है। स्वामी दयानन्द की मान्यताओं में वेद तथा मनुस्मृति-प्रतिपादित सिद्धान्तों का प्राधान्य है। अतः स्वामी जी ने अपनी 'संस्कार-विधि' में सोलहवें संस्कार के रूप में अन्त्येष्टि संस्कार का वर्णन किया है। आश्वलायन गृह्यसूत्र तथा कौषीतकि में –

1. निष्क्रमण 2. कर्णवेध 3. वानप्रस्थ तथा 4. संन्यास का उल्लेख नहीं है। इसी प्रकार गृह्यसूत्र में 'गर्भरक्षण' नाम का संस्कार अधिक लिखा है। जिसे पुंसवन के बाद चतुर्थ मास में कराने का विधान है। इस गृह्यसूत्र के अतिरिक्त किसी अन्य गृह्यसूत्र में यह संस्कार नहीं मिलता। पारस्कर गृह्यसूत्र में वानप्रस्थ संन्यास और अन्त्येष्टि का वर्णन नहीं है। इसी प्रकार उपरिलिखित गृह्यसूत्रों में किसी में 12 बारह, किसी में 10 दस, किसी में 13 तेरह, 14 चौदह संस्कारों का उल्लेख मिलता है। अधिक से अधिक 48 संस्कारों का उल्लेख भी कुछ गृह्यसूत्रों तथा निबन्धों में है। परन्तु स्वामी जी मुख्य रूप से 16 सोलह संस्कारों का उल्लेख उसकी उपयोगिता और उसकी विस्तृत विधि का वर्णन संस्कार विधि में करते हैं। स्वामी जी द्वारा अभिमत 16 सोलह संस्कार निम्न हैं –

1. गर्भाधान 2. पुंसवन 3. सीमन्तोन्नयन 4. जातकर्म 5. नामकरण 6. निष्क्रमण 7. अन्नप्राशन 8. चूडाकर्म 9. कर्णवेध 10. उपनयन 11. वेदारम्भ 12. समावर्तन 13. विवाह 14. वानप्रस्थ 15. संन्यास 16. अन्त्येष्टि।

ऋषि दयानन्द ने विभिन्न गृह्यसूत्रों तथा मनुस्मृति के आधार पर अत्यन्त उपयोगी 16

thearyasamaj.org

सोलह संस्कारों के क्रियाकलाप का वर्णन अपने 'संस्कार विधि' संज्ञक ग्रन्थ में किया है। संस्कार विधि की प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं-

1. चारों वेदों में मंत्रों, ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यक, उपनिषद्, गृह्यसूत्र तथा मनुस्मृति के प्रमाणों से संवलित है। गृह्यसूत्रों के अतिरिक्त वेद तथा मनुस्मृति के प्रमाण अधिक संख्या में दिए गए हैं।

2. प्रत्येक गृह्यसूत्र किसी न किसी वेद से सम्बद्ध है। स्वामी जी ने चारों वेदों से सम्बद्ध मुख्य गृह्यसूत्रों का उपयोग 'संस्कार-विधि' में किया है, इससे 'संस्कार-विधि' संस्कारों का एक समग्र ग्रन्थ के रूप में प्रसिद्ध हो गया। स्वामी जी ने चारों वेदों से सम्बद्ध जिन गृह्यसूत्रों का उपयोग 'संस्कार-विधि' में किए है उसका उल्लेख इस प्रकार है-

1. ऋग्वेद का आश्वलायन गृह्यसूत्र 2. यजुर्वेद का पारस्कर गृह्यसूत्र 3. समावेद का गोभिल गृह्यसूत्र तथा मन्त्रब्राह्मण एवं 4. अथर्ववेद का शौनक गृह्यसूत्र।

इसका परिणाम यह हुआ कि चारों वेदों के गृह्यसूत्रों के अनुसार संस्कार करने-करने वालों के लिए यह एक उपयोगी ग्रन्थ बन गया।

3. संस्कारों की कतिपय विधियों में मांसभक्षण का विधान गृह्यसूत्रों में मिलता है। विशेषकर मधुपर्क के निर्माण में तथा अन्नप्राशन में। किन्तु स्वामी दयानन्द ने स्वरचित 'संस्कार-विधि' में मांस, मछली तथा सुरा को कहीं किसी रूप में स्थान नहीं दिया।

4. गृह्यसूत्रों में संस्कार का पात्र मुख्यत: ब्राह्मण या द्विज अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य को माना गया है। स्वामी जी संस्कारों का पात्र मानव मात्र को मानते हैं। संस्कार श्रद्धा और भक्ति पूर्वक कोई कर सकता है। स्वामी जी के अनुसार संस्कारों को करने वाला द्विज है और द्विजत्व का निर्धारण गुण, कर्म तथा स्वभाव के आधार पर शूद्र कुलोत्पन्न बालक को संस्कार के अयोग्य नहीं माना जा सकता।

5. गृह्यसूत्रों में स्त्री या नारी वर्ग के प्रति अत्यन्त ही भेदभाव मिलता है। मनुस्मृति और अनेक गृह्यसूत्र अनेक संस्कारों के लिए स्त्री को अधिकारी ही नहीं मानते हैं। संस्कारों की अनेक विधियाँ स्त्रियों के लिए विहित नहीं हैं या उन विधानों को स्त्री (बालिका) के संदर्भ में मन्त्रपाठरहित मौन होकर सम्पन्न करना है। स्वामी जी ने इस प्रकार के भेदभाव की कड़ी समीक्षा की है और स्त्री-पुरुष दोनों के लिए समान रूप से सभी विधियों का विधान किया है। ●

thearyasamaj.org

हमारा सर्वस्व- 'ईश्वर, वेद और सृष्टि'

लेखक- मनमोहन कु० आर्य, देहरादून

हम मनुष्य हैं और वेदों ने हमें दो पैर वाला प्राणी कहा है। हमारा शरीर जड़ है जिसमें एक जीवात्मा नाम से जाना जाने वाला चेतन तत्व निवास करता हैं। हम कहते हैं कि यह मेरी आंख है, यह मेरी नाक है, यह मेरा कान है और यह मेरा हाथ है आदि, इससे ज्ञात होता है कि मैं आंख, नाक, कान व हाथ आदि या मेरा पूरा शरीर 'मै' नहीं हूं बल्कि इनसे भिन्न हूं। यह शरीर एवं इसमें सभी अंग मेरे अवश्य हैं परन्तु मैं इन सबसे भिन्न हूं। मै कैसा हूं तो अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि मै एक चेतन तत्व हूं जो अत्यन्त सूक्ष्म, नेत्रेन्द्रिय से अगोचर, सत्य, अविनाशी, अजन्मा, अमर, नित्य, अल्पज्ञ, अल्प परिणाम, अणुरूप, एकदेशी, ससीम, शुभ-अशुभ कर्मो का कर्त्ता व इनके सुख व दुख रूप फलों का भोक्ता हूं। इस संसार में मेरा जन्म माता व पिता से हुआ है। जन्म धारण करने में मेरी व किसी की भी मर्जी नहीं चलती। यदि जन्म लेने की स्वतन्तत्रता होती तो मैं कहीं और व किसी अन्य माता-पिता से जन्म लेता। मुझे जन्म देने वाला माता-पिता से भिन्न अन्य कोई अवश्य है जिसने निर्णय किया कि वर्त्तमान जीवन के माता-पिता मेरे माता-पिता होगें। फिर प्राकृतिक प्रक्रिया से मेरा जन्म हो गया। मुझे कर्म करने की स्वतन्त्रता है पर मैं फलों के बन्धन में बन्धा हुआ हूं। अल्पज्ञ व अल्प शक्ति वाला होने से मैं जो कार्य करता हूं उसमें कमियां रह जाती हैं। विद्याध्ययन एवं पुरुषार्थ से मैं अपने कार्यों में दक्षता प्राप्त करता हूँ। ऐसा करके मैं एक सामान्य व्यक्ति बनता हूं जो अपना निर्वाह अन्यों की तरह सामान्य रूप से या उनसे कुछ उन्नत तरीके से व्यतीत करता हूं। यह कुछ-कुछ मेरा परिचय है।

हमारी वर्त्तमान पीढ़ी व सृष्टि की आदि से लेकर अब तक उत्पन्न हुए सभी पूर्वजों व नाना योनियों के जीवधारियों को यह सारा संसार बना बनाया मिला हैं हम सूर्य, चन्द्र, तारे, नक्षत्र, नाना ग्रह व आकाशीय छोटे-बड़े पिण्ड, आकाश, पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल, वन, पर्वत, नदियां, समुद्र, अन्न-ओषधियां आदि वनस्पतियां संसार में देखते हैं जो सभी हमें बनी बनाई मिली हैं। यह सब वस्तुएं किससे प्राप्त हुई हैं? हम व प्रायः सभी लोग इस पर विचार नहीं करते। हमें लगता है कि सभी मनुष्य रात-दिन केवल अपने-अपने अन्य-अन्य कार्यों में लगे हैं और इस ओर ध्यान ही नहीं जाता। एक कारण यह भी है कि यदि वह इसका उत्तर भिन्न-भिन्न मत के धार्मिक लोगों से पूछते हैं तो उनके उत्तरों को

thearyasamaj.org

मान लेते हैं या उसे स्वीकार ही नहीं करते। उनके पास इस बात के लिए समय नहीं है कि वह उन विद्वानों की तलाश करें जो उनके सत्य उत्तर जानते हैं। इस सब उत्तरों में से एक उत्तर है कि यह सारा संसार एवं इसकी समस्त वस्तुं एक परम विशाल, अनन्त, सर्व व्यापक, सर्वशक्तिमान चेतन सत्ता ने बनाई हैं। उसे सृष्टि बनाने व चलाने का ज्ञान है और अब तक वह अनन्त बार सृष्टि को बनाकर चला चुका है और यह क्रम अनन्त बार इसी प्रकार से चलेगा। इस सृष्टि के आदि से ईश्वर इसे बना कर चला रहा है। 4 अरब 32 करोड़ वर्ष सृष्टि की आयु है। जब यह पूर्ण हो जाएगी तो ईश्वर द्वारा यह सृष्टि प्रलय को प्राप्त हो जाएगी। प्रलय की अवस्था वह अवस्था है जो इस सृष्टि की रचना से पूर्व की, इसकी कारण अवस्था थी अर्थात् सत, रज व तम की साम्यावस्था। विवेक से यह ज्ञान होता है कि ईश्वर इस सृष्टि को धारण कर रहा है। जब तक वह इसे धारण किए हुए है, यह संसार भली-भांति चल रहा है। ईश्वर की रात्रि के आरम्भ होने पर कि जब कुछ नष्ट हो जाएगा। सूर्य, चन्द्र, तारे, सभी आकाशीय पिण्ड व पृथिवीस्थ सभी रचनाएं अपने कारण-मूल प्रकृति में विलीन हो जायेगी।

जिस प्रकार हमारी आत्मा अति-सूक्ष्म है, यह हम सब अनुभव करते हैं। यह चेतन तत्व, ज्ञान व कर्म स्वभाव वाला है, यह भी हम अनुभव करते हैं। यह इतना सूक्ष्म है कि न तो हम स्वयं की आत्मा देख पाते हैं न अन्य प्राणियों की आत्माओं को जो दैनिक जीवन में माता-पिता, भाई, बहिन, पत्नी व बच्चों के रूप में हमारे सम्पर्क में रहती हैं। हमें उनके केवल शरीरों के दर्शन होते हैं और आंखों को देखने पर उसमें आत्मा की चमक दिखाई देती है जो मृत शरीर की आंखों में नहीं होती। जीवात्मा की अति सूक्ष्मता के कारण उसका आकार प्रकार हमें अपने नेत्रों से दिखाई नहीं देता।

चिन्तन करने पर हमें ज्ञान होता है कि ईश्वर भी हमारी आत्मा के कुछ समान सत्य, चित्त, सर्वव्यापी, निराकार, हमारी आत्मा से भी सूक्ष्म, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान सत्ता है। उसी ने यह संसार बनाया है और वही इसको धारण किए हुए है अर्थात् इसका सर्वोत्कृष्ट रूप से संचालन कर रहा है। यहां कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति यह कहेगा कि यद्यपि वह ईश्वर को देख तो नहीं पा रहा है परन्तु ईश्वर के जिस स्वरूप का उल्लेख किया गया है, उसका होना तर्क की दृष्टि से सिद्ध है और उसका होना असम्भव नहीं है। अब प्रश्न यह है कि कैसे पता चले कि वह वस्तुतः है। यहां हम महर्षि दयानन्द का उल्लेख करना चाहते हैं। वह प्रातः व रात्रि समय में समाधि लगाया करते थे। समाधि क्या होती है? ईश्वर का ध्यान जब स्थिर हो जाता है, टूटता नहीं, अखण्डित रहता

thearyasamaj.org

है, उस ध्यान की निरन्तरता को समाधि कहते हैं। उन्होंने सम्यक्-ध्यान व समाधि के बारे में अपने ग्रन्थों में लिखा है। उनके अनेक अन्तेवासी बन्धुओं ने उन्हें समाधि लगाये हुए भी देखा था जिसका वर्णन साहित्य में उपलब्ध है। उन्होंने लिखा है कि ईश्वर का ध्यान वा उपासना करने में आत्मा के दुर्गुण दूर होकर ईश्वर के गुणों के सदृश हो जाते हैं और आत्मा का बल इतना बढ़ता है कि बड़े से बड़े दुःख के प्राप्त होने पर भी, यह हमारी स्वयं की मृत्यु का दुःख भी हो सकता है, मनुष्य घबराता नहीं है, क्या यह छोटी बात है? उनके जीवन की घटनायें इनके इस वक्तव्य की सत्यता का प्रमाण हैं। योग दर्शन के प्रणेता महर्षि पतंजलि ने अनुभव व तर्क, दोनों के आधार पर ध्यान व समाधि एवं योग के अन्य सभी अंगो पर प्रयोग व अभ्यास से सत्य सिद्ध किए जा सकने वाले निष्कर्ष दिये हैं। जब ईश्वर का ध्यान करते हुए उसमें निरन्तरता आ जाती है और साधक घंटों उसमें स्थित व स्थिर रहता है तो उस समाधि के सिद्ध होने पर हृदय में स्थित जीवात्मा में ईश्वर का साक्षात्कार, ईश्वर की प्रत्यक्ष अनुभूति व ईश्वर के आनन्द का अनुभव जो संसार के सभी सुखों से कही अधिक बढ़कर होता है, जीवात्मा को अनुभव होता है।

यह साक्षात्कार ऐसा है जैसा कि हमने सांसारिक जीवन में वस्तुओं को देखकर, सुनकर, पढ़कर निर्भ्रान्त व संशयरहित ज्ञान प्राप्त किया हो। इसके बारे में मुण्डक उपनिषद् के 40 वे श्लोक-'भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयः क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।' में कहा गया है कि ईश्वर का साक्षात्कार अथवा अपने आन्तरिक ज्ञान-चक्षुओं से दर्शन हो जाने पर हृदय की सभी गांठें व ग्रन्थियां खुल जाती हैं, सभी संशय मिट जाते हैं, दुष्ट कर्म क्षय को प्राप्त होते हैं और तब उस परमात्मा जो कि अपने आत्मा के भीतर और बाहर व्याप रहा है, उसमें वह जीवात्मा निवास करता है। ईश्वर के साक्षात्कार के बाद जब मृत्यु आती है तब जीवात्मा जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होकर मुक्ति में चला जाता है। मुक्ति का लाभ व सुख ऐसा है कि जिसकी उपमा कोई सांसारिक सुख या पदार्थ नहीं है। हां, ये तो कह सकते हैं कि बड़े से बड़े सांसारिक सुख मुक्ति के सुख की तुलना में हेय व न्यून ही हैं। यह मुक्ति विवेकशील कुछ ही लोगों को प्राप्त होती है। हम यह अनुमान करते हैं कि अतीत में यह मुक्ति योगेश्वर कृष्ण, मर्यादापुरूषोत्त्म राम, महर्षि दयानन्द सरस्वती व इनसे पूर्व हुए सन्त, ऋषि-महर्षि व योगियों को प्राप्त हुई होगी। प्रत्येक समझदार वा ज्ञानी मनुष्य को वेद मार्ग पर चल कर मुक्ति की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए, ऐसा वैदिक साहित्य के विद्वानों का मत है।

thearyasamaj.org

इस विवरण से हम समझते हैं कि आधुनिक, तार्किक व विचारशील माने जाने वाले युवा-वृद्ध बन्धु भी काफी सीमा तक ईश्वर के अस्तित्व व उसके साक्षात्कार के सिद्धान्त व मान्यता से सहमत होंगे। यदि उन्हें कहीं कुछ भी शंका है तो हमारा सुझाव है कि वह स्वयं वैदिक ग्रन्थों का स्वाध्याय एवं योग का व्यावहारिक प्रयोग करके देख सकते हैं। कुछ दिनों के स्वाध्याय व अभ्यास से उन्हें अनुमान होगा कि ईश्वर, जीवात्मा व ईश्वर के साक्षात्कार की मान्यतायें सत्य व यथार्थ हैं। इस लेख की यहां तक की यात्रा के बाद एक साधक व अध्येता में ज्ञान प्राप्ति की तीव्र अभिलाषा का उत्पन्न होना स्वाभाविक लगता है। उसे यह भी अनुमान हो गया होगा कि ईश्वर ने जब सृष्टि बनाई तो लोगों के कल्याण के लिए उसने कुछ ज्ञान तो आदि मनुष्यों को अवश्य दिया ही होगा अन्यथा वह अपने सभी सांसारिक व्यवहार कैसे करते और ईश्वर का ज्ञानवान व सर्वशक्तिमान होना व्यर्थ सिद्ध होता। यदि वह ज्ञान नहीं देता तो अनेक पीढ़ियां तो बिना किसी धर्म-कर्म का पालन किए ही समाप्त हो जाती और यदि अन्य किसी हेतु से जो सर्वथा असम्भव है, ज्ञान प्राप्त भी होता उसमें भी नाना मत होते और सत्य व असत्य का निर्णय करना कठिन हो जाता। अतः जिज्ञासा उठने पर हमें स्वाध्याय व विवेक से ज्ञात होता है कि संसार की सबसे प्राचीन ज्ञान की पुस्तक का नाम वेद है। वेद चार हैं, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद। सौभाग्य से हमारे पूर्वजों के पुरुषार्थ से यह आज भी अपने शुद्ध स्वरूप में उपलब्ध हैं। अब बात आती है कि वेदों के सत्य अर्थ कैसे जाने जायें तो इसके लिए भी हमारे पूर्वजों ने अथक परिश्रम कियाऔर हमे संस्कृत की अष्टाध्यायी-महाभाष्य--निरूकत-निघण्टु पद्धति दी है जिसका अध्ययन कर कोई भी व्यक्ति स्वयं वेदों के अर्थों को जान सकता है। यदि किसी कारण संस्कृत अध्ययन में परिश्रम नहीं कर सकता है, तो महर्षि दयानन्द सरस्वती, आचार्य रामनाथ वेदालंकार, पंडित विश्वनाथ विद्यालंकार व अन्य आर्य विद्वानों के उपलब्ध वेद भाष्यों से लाभान्वित हो सकता है। हमारा अनुमान है कि सच्चे जिज्ञासुओं को ईश्वर व सृष्टि विषयक सभी प्रश्नों का उत्तर व समाधान प्राप्त हो जायेगा। हमारा सुझाव है कि वेदों के सत्य-अर्थों को जानने के इच्छुक सभी विज्ञासुओं को पहले सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका व आर्याभिविनय आदि पुस्तकें अवश्यक पढ़नी चाहिये जिससे उन्हें ईश्वर व सृष्टि आदि के विषय में प्रभूत ज्ञान हो जायेगा। हम अनुभव करते हैं कि वैदिक साहित्य का अध्ययन करने पर सभी अध्येता यह पायेंगे कि वेदाध्ययन से उनका जीवन सफल हुआ है।

thearyasamaj.org

अन्य लोग जो वैदिक साहित्य के सम्पर्क में नहीं आ पाते हैं, उनकी ऐसी स्थिति होना सम्भव नहीं है।

अब हम सृष्टि पर विचार करते हैं। वेद एवं वैदिक साहित्य उत्तर देते हैं कि परमात्मा ने यह सृष्टि हमारे त्यागपूर्वक उपभोग के लिए बनाई है। ईश्वर को यह ज्ञान था कि जिन मनुष्यों को वह उत्पन्न कर रहा है, उनकी आवश्यकताएं क्या-क्या होंगी? जब व्यक्ति कार्य करता है तो थक जाता है और उसे भूख-प्यास लगती है। भूख की निवृत्ति के लिए भोजन व प्यास की निवृति के लिए जल की आवश्यकता होती है। अतः ईश्वर ने जल व नाना प्रकार के भोजन के पदार्थ बनाए हैं। शरीर को ढकने के लिए वस्त्र की आवश्यकता होती है, अतः इसके लिए भी रूई आदि आवश्यक पदार्थ बना कर उसका वस्त्र बनाकर उसे उपयोग करने के ज्ञान भी वेदों में हमारी आत्मा, मन व बुद्धि में दिया है। इसी प्रकार शरीर में जो इन्द्रियां हैं, उन सबके विषय बनाकर सृष्टि में उपलब्ध करा रखे हैं। यह सृष्टि हमारे शरीर व जीवन के निर्वाह के लिए आवश्यक है। इसका सदुपयोग करना ईश्वर को प्रसन्न करना है और इसका दुरुपयोग करना ईश्वर को नाराज करना है। हम संसार में भी देखते हैं कि हमें किसी से कोई भी वस्तु सदुपयोग के लिए ही दी जाती है। सिपाही को बन्दूक सदुपयोग के लिए दी गई है, यदि व दुरुपयोग करता है तो अपराधी करना है। परिग्रह, योग व ईश्वर प्राप्ति में बाधक है। अतः अनावश्यक परिग्रह से बचना चाहिए। शरीर को स्वस्थ रखते हुए ध्यान-उपासना से ईश्वर को प्राप्त कर ब्रह्मवर्चस को प्राप्त हों और मृत्यु के पश्चात् ब्रह्मलोक अर्थात् मुक्ति या मोक्ष के अधिकारी बनकर जन्म-मरण के दुःखों से मुक्ति प्राप्त करें।

हमने अपने ज्ञान व अनुभव से यह जाना है कि मनुष्य जीवन का उद्देश्य व लक्ष्य आत्मा, ईश्वर व सृष्टि का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर योग साधनों से ईश्वर का साक्षात्कार करना व मृत्यु तक की अवधि तक जीवन-मुक्त अवस्था का समय व्यतीत कर मृत्यु के पश्चात् जन्म मरण से छुटकर मुक्ति को प्राप्त करना है। ईश्वर के साक्षात्कार व मुक्ति प्राप्ति के यथार्थ साधन यथा ईश्वरोपासना, यज्ञ, सेवा, परोपकार, सत्संग आदि केवल वैदिक धर्म में ही उपलब्ध है। इसको जानना व आचरण करना ही हमारे व सभी मनुष्यों के जीवन का सर्वस्व या परम लक्ष्य निर्धारित किया है। इसके विपरित जो मार्ग है वह मनुष्य को इस जन्म व परजन्म में सुख, समृद्धि व मुक्ति के स्थान पर बन्धन में डालकर दुःखमय जीवन व्यतीत कराते हैं। अतः प्रत्येक समझदार व्यक्ति को गहन विचार व चिन्तन कर अपने लक्ष्य का निर्धारण कर उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्नरत होना चाहिए। ●

thearyasamaj.org

!! ओ३म् !!

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी द्वारा क्रान्तीकारी विचारों की मौलिक झलक

पं० उम्मेद सिंह विशारद, देहरादून

युगों के उपरान्त अठारवीं शताब्दी में इस धरती पर देव दयानन्द ऐसे महान सुधारक थें, जिन्होंने सभी समाज सुधारकों को पीछे छोड़कर एक नयी वैचारिक क्रान्ती का शंखनाद किया। उन्होंने अद्‌भुत साहस दिखाकर धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक कुरूतियों पर जोरदार प्रहार किया। ऐसे कठिनतम कार्य को तो एक ॠत देवता ही कर सकता था।

भारत के इतिहास में एक महत्वपूर्ण बात पायी जाती है कि जिन्होंने सम्पूर्ण मानव जाति के जीवन को पलट दिया, वे आबाल ब्रह्मचारी रहे हैं। ॠषि दयानन्द आदित्य ब्रह्मचारी थे। स्वामी शंकराचार्य आबाल ब्रह्मचारी थे। स्वामी विवेकानन्द भी आबाल ब्रह्मचारी थे। महात्मा गांधी आबाल ब्रह्मचारी तो न थे, परन्तु ब्रह्मचारी रहने का उनका संकल्प दृढ़ था। इन महापुरूषों के विचारों ने भारत के कोने-कोने को व्याप लिया था। अपने-अपने समय में महान कार्य किया और एक दूसरे से कड़ी जोड़ने का कार्य किया। ऐसा प्रतीत होता है कि भविष्य में भी इस देश का कर्णधार वही हो सकेगा, जो आबाल ब्रह्मचारी रहकर देश की चुनौतियों को स्वीकार कर चैलेन्ज करेगा।

देखने में आया कि महर्षि दयानन्द जी ने समकालीन व जिन कुरीतियों के संस्कार भारत के नर-नारी में खून के एक-एक कतरे में समा गये थे, उन पर प्रहार किया, जिनकी जड़े बहुत गहरी गयी थीं। यह अपने आप में सर्वोच्च महान कार्य था, आइए विचार करते हैं।

1. धार्मिक क्षेत्र में रूढ़ीवाद पर प्रहार-

भारत का धर्म वेदों से बंधा हुआ था और नर-नारी में वेदों के प्रति अगाध श्रद्धा थी और हिन्दु धर्म की आधार शिला वेद थे। हिन्दु लोग वेदों से इधर-उधर नहीं जा सकते थे। किन्तु दयानन्द से पूर्व वेदों के विद्वानों ने वेदों के अर्थ का अनर्थ किया हुआ था, उनमें सायणाचार्य, महीधर, मेसिमूलर जेकोपी, शंकराचार्य आदि ने वेद मंत्री का इतिहासपरक अर्थ करके सम्पूर्ण समाज को

thearyasamaj.org

गहरे अंधेरे कुएं में डाल दिया था। उन्होने प्रचलित किया कि वेदों में पशुबलि है, वेदों में नारी को पढ़ने का अधिकार नहीं है। वेदों में काल्पनिक देवी-देवता हैं। वेदों में छुआछूत है। इस प्रकार वेदों के अर्थों को अपने स्वार्थ के लिये बदल दिया गया था। भारत की भोली जनता इसका शिकार बन गयी थी।

महर्षि दयानन्द जी ने सर्वप्रथम वेदों के रूढ़ी अर्थों पर किया, उन्होंने उन मन्त्रों के अर्थों को शुद्ध करके प्रमाणित किया कि वेदों में महिलाओं व शूद्रों को पढ़ने का अधिकार है। वेदों में मूर्ति पूजा नहीं है, जाति व्यवस्था नहीं है, पशुबलि नहीं है। वेदों के शब्दों का सही अर्थ विज्ञान व सृष्टि क्रमानुसार करके जनता के सामने रखा और एक वैचारिक नई क्रान्ति ने जन्म लेकर सदियों से चली आ रही अन्य परम्पराओं को धराशायी कर दिया। महर्षि दयानन्द ने धर्म के सत्य अर्थ सामने रखे, जमाने की दिशा ही बदल दी, जमाने की गर्दन पकड़कर अपने पीछे चलाया। निरन्तर सत्य, धर्म का प्रचार करते रहने के लिए आर्य समाज क्रान्तीकारी संगठन की स्थापना की। आर्य समाज ने सम्पूर्ण विश्व को अन्ध विश्वास की चूलें हिला कर रख दीं।

2. समाजिक क्षेत्र में रूढ़ीवाद का प्रहार- महर्षि दयानन्द भूत, वर्तमान तथा भविष्य को पिछले तथा अगले को मिलाकर चलना चाहते थे। उनका सर्वथा मौलिक दृष्टिकोण था। सही कारण था कि सिर्फ भूत के साथ चिपटे रहने वाले रूढ़ीवाद का सामाजिक क्षेत्र में उन्होंने बहिष्कार किया। वे समाजिक कुरूतियों के स्थिरता के पक्षधर नहीं थे। किन्तु उनके समय में हिन्दु समाज नवीनता से डरता था। वह बहुत कठिन दिन थे, सदियों पुराने सामाजिक कुप्रथाओं को मिटाना आसान कार्य नहीं था, किन्तु देव दयानन्द सत्य की राह से जरा भी नहीं डिगे। एक नयी सामाजिक क्रान्ति को जन्म दे ही दिया। ऋषि दयानन्द जी का उद्योग का परिणाम था कि समाज में धीरे-धीरे परिवर्तन आने लगा। स्त्रियों के प्रति जहाँ ''स्त्री शूद्रो नाधीयाताम'' का राग अलापा जाता था, वहाँ कन्याओं को पढ़ने के लिए पाठशालाऐं खोली जाने लगी। शूद्रों पर शोषण वर्ती बदलने लगी। यज्ञोपवीत पहनने का सबको अधिकार मिल गया। जातीवाद, भेदभाव,

thearyasamaj.org

छूआछूत, मृत्युभोज, काल्पनिक देवी-देवता और अनेक सामाजिक कुरूतियाँ बदलने लगी। ऋषि दयानन्द जो समाज की रूप-रेखा बना दी, उसी को लेकर 20वीं शताब्दी के सामाजिक तथा राजनैतिक नेताओं ने कार्य किया। महात्मा गाँधी ने उन्हीं सुधारों का अनुशरण किया।

3. राजनैतिक क्षेत्र में प्रहार - ऋषि दयानन्द की विचारधारा का आधार रूढ़ीवाद का उन्मूलन करना था, राष्ट्र के नेतृत्व में जिसका राज्य चला आ रहा हो, चाहे उसमें कई विकृतियाँ हों, वही ठीक है। उन्होंने उस पर भी प्रहार किया। उन्होंने कहा जब तक राष्ट्र का नेतृत्व करने वाला विद्वान, धार्मिक व सदाचारी व सादगी वाला न हो, तब तक वह कुशल शासन नहीं दे सकता है। उन्होंने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के 8वें सम्मुलास में लिखा-अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य प्रमाद परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की कथा ही क्या कहनी, जो कुछ भी है सो विदेशियों से पदाक्रान्त हो रहा है। दुर्दिन जब आता है तब देश को अनेक दु:ख भोगने पड़ते है। कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है। उन्होने राष्ट्र की उन्नति के विकास में **धर्मशक्ति वेदानुकूल** + **राजशक्ति वेदानुकूल** + **ज्ञानभक्ति वेदानुकूल** + **और धनशक्ति वेदानुकूल** - सत्य के आधार पर होनी चाहिए। इस प्रकार महर्षि दयानन्द जी स्वतन्त्र भारत में स्वस्थ, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक परिवर्तन करके भारत को पुन: जगत गुरू, धर्मगुरू, सोने की चिड़िया बनाना चाहते थे, जिसका प्रभाव वर्त्तमान में सम्पूर्ण विश्व पर शनै-शनै पड़ने लगा है। ऐसे महान देव पुरूष को हम गर्व से भारत का पितामाह कह सकते हैं।

-: सूचना :-

आर्य समाज के समस्त पदाधिकारियों एवं कार्यकत्ताओं से निवेदन है कि आप अपने आर्य समाज के गति-विधि, उत्सव आदि की सूचना सभा को अवश्य दें जिससे उन समाचारों को आर्य संकल्प में प्रकाशित किया जा सके।

thearyasamaj.org

अंधविश्वास-निर्मूलन

पिछले अंक का शेष....

लेखक- मदन रहेजा, मुम्बई

अंधविश्वास : 51 : नदियों और पवित्र सरोवरों के जल में पैसे (coins) डालने से मुरादें पूरी होती हैं।

निर्मूलन : कुछ परम्पराएँ जीवधारियों की दीर्घायु की कामना से शुरू की जाती हैं, किन्तु वर्षों बाद वे भेड़चाल में बदल जाती हैं। जल में सिक्के फैंकना भी ऐसी ही भेड़चाल है। जब भारत में तांबे, चाँदी और सोने की बहुलता थी तो सिक्के भी इन्हीं धातुओं के प्रचलित थे और बर्तन भी इन्हीं धातुओं के होते थे। इन धातुओं के सिक्के डालने से जल पवित्र और गुणकारी होकर लोगों को स्वस्थ बनाए रखता था। जिन नदियों, कुओं, सरोवरों और बाड़ियों का जल पीने के काम आता था, उसमें लोग तांबे, चाँदी और सोने के सिक्के फैंकते थे। तांबा हो या सोना, पानी में पड़ा रहे तो उनके गुण जल ग्रहण कर लेता था। ऐसे पानी से प्रजा स्वस्थ और दीर्घायु होती थी।

अब एल्युमीनियम के सिक्के चल पड़े हैं। एल्युमीनियम मनुष्य के लिए घातक है, तपेदिक फैलाता है। ऐसे सिक्के नदियों में डालना नरसंहार करना है। परंपरा तो अच्छी थी, मगर विकृत होकर भेड़चाल बन गए है। इस रिवाज पर तुरंत अंकुश लग जाना चाहिए।

जल ही जीवन है, जल के बिना मनुष्य का जीवन अधूरा है। जल का अर्थ है 'ज' जन्म से लेकर 'ल'=लय तक, हर प्राणी के काम आए। पाँच भूतों में जल भी एक भूत है। पृथ्वी-जल-अग्नि-वायु और आकाश-इन्हीं पंचमहाभूतों से शरीर बनता है। मनुष्य-शरीर में जल की मात्रा 80% होती है।

घातक धातुओं के सिक्के जल में (समुद्र-झील-तालाब इत्यादि में) डालने से कोई जल पवित्र या शुद्ध नहीं होता, बल्कि दूषित होता है। किसी भी वस्तु को दूषित करना महापाप है। पानी में रुपये फैंकने से कोई मुराद पूरी नहीं होती। जल देवता है। उसमें एल्युमीनियम के सिक्के डालना कहाँ की समझदारी है? देखा गया है कि लोग सड़े हुए फल-फूल, पूजा से बचे हुए पान-पत्ते, चावल, नारियल इत्यादि सब जल में डाल देते हैं। इससे नदियों का जल प्रदूषित होता है, सड़ाँध मारता है, रोग बढ़ता है। पुण्य-कर्म के बहाने पाप न कमाएँ। ईश्वर किसी से फल-फूल नहीं मागँता।

thearyasamaj.org

उसकी प्रेम से उपासना करें। उसके दिये हुए जल को प्रदूषित करके पाप के भागी न बनें।

यदि रुपये-पैसे के यही सिक्के किसी दीन-दु:खी, निर्धन, या जिस व्यक्ति को अत्यावश्यकता हो उसे दे देंगे तो यह महापुण्य होगा। हर वस्तु के सदुपयोग से ही मनोवांछित कामनाएँ पूर्ण होती हैं। पानी हर वस्तु को स्वच्छ रखें-प्रदूषित न करें कि जल में रहनेवाले प्राणियों तक की मृत्यु हो जावे।

ऐसे पुण्य का क्या लाभ जो पूरे शहर के पानी में विष घोल दे? इन्हीं अन्धविश्वासों और अन्धश्रद्धा के कारण ही मनुष्य दु:खी होता है। जहाँ हम अपना भला सोचते हैं वहाँ औरों का भी सोचना चाहिए क्योंकि सब प्राणियों की खुशी में ही हम सब मनुष्यों की खुशी का राज छुपा है। ईश्वर सबको सद्बुद्धि प्रदान करें।

अंधविश्वास : 52 : तीर्थयात्रा से पाप धुलते हैं!

निर्मल : बहुत ही ज्ञानवर्धक भ्रान्ति है- बहुत ही अच्छी शंका है।

तीर्थयात्रा से आनेवाले तीर्थयात्रियों से ही पूछ लें कि क्या उनके सब पाप धुल गए? पाप किये ही क्यों थे कि उनको धोने के लिए अपना घर-बार छोड़कर, अपनी जान जोखिम में डालकर यहाँ से वहाँ घूमते-फिरते हैं? इसी तरह अगर पाप धुलते रहे तो सबके पाप तीर्थस्थानों पर ही पड़े रहेंगे और बाद में आनेवाले दूसरे तीर्थ-यात्रियों को लग जाएँगे! क्या भरोसा पाप धुलने के बजाय पाप चढ़ा लाएँ? ऐसा भी तो हो सकता है कि पाप धोने के बहाने तीर्थों पर जाएँ और वहाँ कई नए-नए पाप कर आवें? अक्सर लोग तीर्थयात्रा कम करते हैं, घूमने-फिरने अधिक जाते हैं। है ना?

प्रिय पाठको! गंगा-यमुना-सरस्वती-गोदावरी-व्यास-कृष्णा-कावेरी इत्यादि नदियों का पानी शरीर की मैला तो धो सकता है, परन्तु मन पर पड़ी मैल भौतिक वस्तुओं से नहीं धुल सकती, उसके लिए तो ज्ञानरूपी साबनु की आवश्यकता पड़ती है। धर्माचरण करनेवाले को तीर्थों तक जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः।
तेषां सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि॥

हमारे अंदर ही ज्ञान-गंगा बहती है। जिसमें मन पर पड़े मैल (मल-आक्षेप-आवरण) धुल जाते हैं। ज्ञान-गंगा का पानी सत्यज्ञान के भण्डार 'वेद' से आता है। जो सदा बहता रहता है। इसी में डुबकी लगाने से जीवन साफ-सुथरा-सफल हो जाता है।

भारत में तीर्थस्थान प्राय: नदियों के किनारे या पर्वतों के शिखरों पर स्थित हैं जहाँ भगवान की मूर्तियों को सजाकर मंदिर बनाकर रखा जाता है। भक्तजन यहाँ आते हैं-नदियों में, झरनों

thearyasamaj.org

में नहाते हैं। शरीर को शीतल जल से स्वच्छ करते हैं, साफ-सुथरे कपड़े पहनकर मंदिरों में भगवान के दर्शन करते हैं और अपने दुखड़े उनके सामने रखते हैं। मन-मंदिर में बैठा परमपिता परमात्मा उनकी बातें सुनता है उनकी भावनाओं को परखता है। इस प्रकार तीर्थयात्री ब्राह्मणों को, भिखारियों को, वृद्ध अनाथों को दान-दक्षिणा देते हुए तीर्थस्थानों पर जाते हैं। महीने-भर की यात्रा के पश्चात् घर लौटते हैं। साथ में लाते हैं पवित्र नदियों का जल, वहाँ की प्रसिद्ध मिठाइयाँ (प्रसाद के तौर पर) और अपने छोटे बच्चों के लिए कुछ खिलौने। इस प्रकार यात्रा समाप्त होती है।

आईए अब इन बातों का सूक्ष्मता से अध्ययन करें।

तीर्थस्थान नदियों के तटों पर या पर्वतों के शिखरों पर होते हैं, क्यों? हमारे पूर्वज जानते थे कि शहरों का वातावरण धीरे-धीरे बिगड़ता जा रहा है और प्रदूषण भी अब कंट्रोल में नहीं रहा तो उन्होंने मंदिरों का निर्माण ऐसे स्थानों पर किया जो शहरों से दूर हो (प्रदूषणों से मुक्त हों) और जहाँ की वायु शुद्ध हो। ऐसा स्थान नदियों के किनारे और पर्वतों पर ही ठीक लगता है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर इस प्रकार के तीर्थस्थानों का नाम रखा गया कि लोग सुख-शान्ति के वातावरण में आएँ और तनावमुक्त रह सकें। कुछ समय के लिए ऐसे स्थानों पर जाने से स्वास्थ्य-लाभ होता ही है। साथ-साथ घूमने-फिरने से नवयुवकों में उत्साह भी बढ़ता है। पहाड़ों पर चढ़ने से और वहाँ की शुद्ध वायु से अनेक प्रकार के रोग भी भाग जाते हैं- यह वैज्ञानिक सत्य है। लोग समझते हैं कि तीर्थस्थलों पर जाने से ही हमारे दु:ख-दर्द-पाप इत्यादि धुल जाते हैं। चलो इसी बहाने लोग शहरों की जिन्दगी से ऊबकर कुछ समय प्रकृति की गोद में खुले वातावरण में बिताते हैं- यह भी ठीक है!

प्राचीन काल में साधु-संत उपदेश देते थे तो श्रद्धालु भक्तजन श्रवण करते थे, उन पर मनन करते थे तथा अपने जीवन में धारण करते थे। यही सही है कि संतों की वाणी जीवन में उतारने से मनुष्य पाप-कर्मों से बचता है, इसी प्रकार वह अपने जीवन को सँवारता है-यही तीर्थ कहाता है। जिससे तर जाए वही तीर्थ-स्थान बन गए है। काशी-मथुरा-हरिद्वार-

बदरीनाथ-केदारनाथ इत्यादि जितने भी ये स्थान तीर्थ माने जाते हैं, वे असल में उन संतों के आश्रम हुआ करते थे। वहाँ जाने से लाभ यही है कि ऋषियों की कही बातों को जाने-मानें तथा अपने जीवन में उतारें।

माता-पिता-गुरु-आप्तपुरुष तथा धर्मग्रन्थों की बताई बातों को समझकर उनको व्यवहार में लाना ही सच्चा तीर्थ है। वेदाध्ययन करना भी तीर्थाटन है जिससे इस संसाररूपी भव-सागर से तर जाएँ, मोक्ष प्राप्त करें।

thearyasamaj.org

अंधविश्वास : 53 : मूर्ति आदि में श्रद्धा रखने से भी हमारी सभी प्रार्थनाएँ ईश्वर सुनता है!

निर्मूलन : पिता सामने बैठे हों और पुत्र उसे पानी तक न पूछे बल्कि पिता को तो भूखा मरने दे और उसकी फोटो के आगे फल-मिठाई अर्पित करता रहे तो ऐसे पुत्र को आप क्या कहेंगे? मूर्ति पूजक भी यही तो करते हैं। ईश्वर से तो मुँह मोड़ लेते हैं और पत्थरों की पूजा करते रहते हैं- इसे आप क्या कहेंगे?

ईश्वर सबकी प्रार्थनाओं को अच्छी तरह सुनता है और प्रार्थनाओं के पीछे क्या भावनाएँ होती हैं वह भी जानता है, परन्तु ईश्वर को भूलकर मूर्ति आदि जड़ पदार्थ में आस्था रखने से तथा उसे ही ईश्वर मानने से, ईश्वर अवश्य की उस प्रार्थना का फल नहीं देता। ऐसा करने से न केवल समय की हानि होती है, अपितु वह व्यक्ति अज्ञानरूपी अन्धकार के महासागर में गहरा डूबता जाता है।

सर्वप्रथम यह समझना होगा कि श्रद्धा क्या है, किसे कहते हैं, तभी इस भ्रान्ति का निवारण आसानी से हो सकता है। श्रद्धा=श्रत्+धा। श्रत् कहते हैं सत्य को और धा का अर्थ है 'धारण करना', अतः श्रद्धा का अर्थ हुआ सत्य में धारण रखना। बिना सोचे-समझे किसी पर भी विश्वास कर लेना तो अन्धश्रद्धा कहाती है। सरल भाषा में कहें तो सत्य को धारण करके उसे व्यवहार में लाना श्रद्धा होती है। इसके विपरीत असत्य का सहारा लेकर, उसे सच समझकर व्यवहार करना-यह अन्धश्रद्धा कहाती है। जैसे कोई अग्नि में श्रद्धा करे जल की, तो नतीजा क्या होगा? अग्नि का धर्म है जलाना। कोई जल समझकर अग्नि से हाथ धोएगा तो परिणाम सभी जानते हैं कि हाथ जल जाएगा, जले का इलाज करना पड़ेगा। उपचार में समय के साथ-साथ खर्च भी होगा। यह अन्धश्रद्धा का फल है। जो वस्तु जैसी है उसे वैसा ही जानना-मानना-कहना तथा व्यवहार में लाना ही वास्तविक श्रद्धा है। श्रद्धा से प्रेम उत्पन्न होता है। और प्रेम से ही ईश्वर के परम आनन्द को पाया जा सकता है। ईश्वर को पाने के लिए ईश्वर के सच्चे स्वरूप को जानना अत्यावश्यक है। ज्ञान न होने पर ही अन्धश्रद्धा का सामना करना पड़ता है। वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, अतः ईश्वरीय ज्ञान होने से वेद का स्वाध्याय करना चाहिए, इससे ईश्वर के सच्चे स्वरूप को जान सकते हैं। ईश्वर को जानकर ही ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है, वरना कोई भी मार्ग अपना लें, ईश्वर की प्राप्ति संभव नहीं।

वेदानुसार-ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप-निराकार-सर्वशक्तिमान्-न्यायकारी-दयालु-अजन्मा-अनन्त-निर्विकार-अनादि-अनुपम-सर्वधार-सर्वेश्वर-सर्वव्यापक-सर्वान्तर्यामी-अजर-अमर-अभय-नित्य-पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है-वही वेद का दाता और सब जीवों के कर्मफल को देनेहारा है।

thearyasamaj.org

यजुर्वेद में ईश्वर का स्वरूप:

1. न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः। 32/3
2. यस्माज्जातं...सचते स षोडशी। 32/5
3. स पर्यगाच्छुक्रमकायम्...समाभ्यः। 40/8

प्रभुभक्त समझ सकते हैं कि वह ईश्वर कैसा है जिसकी वे तलाश कर रहे हैं। ईश्वर चेतन है, निराकार है-केवल इन दो गुणों को समझ लें, बाकी सब अपने-आप समझ में आते जाएँगे।

चेतन अर्थात् जिसमें ज्ञान हो, और निराकर का अर्थ होता है जिसका आकार न हो। अब स्वयं ही निर्णय कर सकते हैं कि मूर्ति जो मिट्टी से बनी एक चित्रकार की कल्पना है-जो सीमित दायरे में है-वह तो दीखती है, उसे छू सकते है? उसका रंग रूप बदल सकते हैं क्या वह ईश्वर हो सकता है? जड़ वस्तु में चेतना नहीं होती अर्थात् उसमें उसमें ज्ञान नहीं होता। उस मूर्ति को तोड़ा या फिर जोड़ा जाए- उसे नहलाया जाए या फिर उसे धूप में सुखाया जाए, अर्थात् जैसे हम चाहें वैसा बर्ताव मूर्ति से कर सकते हैं। क्या ऐसा ईश्वर के बारे में सोच-समझ सकते हैं?

ईश्वर सर्वव्यापक है। मूर्ति तो एकदेशी है अर्थात् मूर्ति का सीमित दायरा है, उसको उठाकर कहीं भी रख सकते है। आप ईश्वर (मूर्ति) को उठा सकते हैं, छू सकते हैं, उसे मनचाहे स्थान पर रख सकते हैं, वहाँ अच्छा न लगे तो और कहीं रख सकते हैं। ईश्वर न हुआ, सभी के हाथों की कठपुतली बनकर रह गया। पाठक स्वयं समझ लें-क्या ऐसा संभव है?

चंद लोगों की वजह से ईश्वर (मूर्ति) को दर-दर की ठोकरें खानी पड़ती है। रंग-रूप फीका पड़ जाए तो उसे नष्ट कर दूसरे भगवान (मूर्ति) को स्थापित कर देते हैं। इसका तो यह निष्कर्ष हुआ कि भगवान इन्सान के बस में है, अर्थात् इन्सान भगवान से महान् है।

सज्जनों। ये धर्मान्ध लोगों की बातें हैं। अन्धविश्वासियों की बातें हैं। अज्ञानियों की बातें हैं। स्वार्थी लोगों की बातें हैं। अधर्मी व्यापारियों की बातें हैं। धन-दौलत के पुजारियों की बातें है। मूर्ख लोगों की बातें हैं।

ईश्वर तो सर्वव्यापक है- सत्+चित्त+ आनन्दस्वरूप है, निराकार है, वह तो सर्वान्तर्यामी है, घट-घट में बसता है, सबके हृदय में बसता है, सबके अंग-संग रहता है, वह तो सब स्थान में विद्यमान है, हम सभी उसी परमपिता परमात्मा की गोद में रहते हैं। उससे मिलने का सरलतम उपाय यह है कि अपने ही मन में झाँको, वह परमेश्वर मिल जाएगा। चर्मचक्षुओं को बंद करें, ज्ञानचक्षुओं को खोलें, वह प्रियतम तो यहीं है। यहाँ-वहाँ क्यों ढूँढना?

मूर्ति में भी भगवान तो व्याप्त है, परन्तु हम मूर्ति में नहीं। जहाँ हम है वहाँ वह है। वहीं तो दोनों का मिलन हो सकता है। केवल मूर्ति के चक्कर में रहेंगे तो भगवान भी नहीं मिलगा। पानी कभी दूध नहीं बन सकता। जड़ वस्तु कभी चेतन नहीं बन सकती और चेतन कभी जड़ नहीं बन सकता।

अतः जीवन में सत्य को धारण करें- श्रद्धापूर्वक ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करें। इसी में सबका कल्याण है। अन्धश्रद्धा को दूर करें, तभी हम ईश्वर की कृपा के पात्र बन

thearyasamaj.org

ऋषिबोधोत्सव सम्पन्न

बिहार राज आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रांगण में ऋषिवोधोत्सव के अवसर पर 17.02.2015 को अपराह्न 2 बजे से हवण, यज्ञ, प्रवचन आदि के कार्यक्रम आयोजित किये गये। पं० संजय सत्यार्थीके पौरोहित्य एवं सभा मंत्री श्री रमेन्द्र कुमार गुप्ता जी के यज्ञमानत्व में यज्ञ किया गया। इस अवसर पर मंत्री जी के अलावा स्वामी नित्यानन्द , बहन निर्मला, पं० बिनोद शास्त्री ने अपने-अपने विचार रखे तथा भजनों को प्रस्तुत किया। आगंतुक महानुभवों में श्री ज्ञानेश्वर शर्मा, श्री भोला प्र० आर्य सपत्नीक श्री प्रेम कुमार आर्य, श्री प्रमोद आर्य, श्री सत्येन्द्र कु० आर्य, श्री विन्दा शास्त्री, श्री रामइकबाल शास्त्री आदि ने भाग लिया।

ऋषि बोधोत्सव सम्पन्न

आर्य समाज मन्दिर नेमदारगंज (नवादा) में महर्षि दयानन्द बोध महोत्सव में तीन दिनों तक प्रभातफेरी निकाली गई जिसमें पूरे गाँव में वैदिक धर्म एवं ऋषि दयानन्द के गुणगान के गीतों एवं जयघोषों से लोगों को प्रेरित करने का कार्य श्री मनोज कुमार सौम्य के प्रयास से पूरा हुआ। शिव रात्रि के दिन आर्य समाज मन्दिर में श्री हर्षवर्द्धन आर्य के निर्देशन में देव यज्ञ में शिव संकल्प मन्त्र से आहुति देकर परम दयालु परमात्मा से कल्याणकारी मार्ग पर चलने का संकल्प दुहराया गया।

सत्यदेव

ऋषिवोधोत्सव धूम-धाम से इन आर्य समाजों में मनाया गया।

1. आर्य समाज, लखना
2. आर्य समाज, व्यापुर
3. आर्य समाज, बिहार शरीफ
4. आर्य समाज, सोहसराय
5. आर्य समाज, हिलसा
6. आर्य समाज, नेमदारगंज
7. आर्य समाज, मानपुर गया
8. आर्य समाज, बथानी
9. आर्य समाज, रजौली
10. आर्य समाज, अलीगंज
11. आर्य समाज, चेवारा
12. आर्य समाज, बारो
13. आर्य समाज, केन्दुआलेवार
14. आर्य समाज, झाझा
15. आर्य समाज, दरभंगा
16. आर्य समाज, नरकटियागंज
17. आर्य समाज, रक्सौल
18. आर्य समाज, आरा
19. आर्य समाज, बरबीघा
20. आर्य समाज, जोगबनी
21. आर्य समाज, मोतीहारी
22. आर्य समाज, लौरिया
23. आर्य समाज, गौनाहा
24. आर्य समाज, भभुआ
25. आर्य समाज, अगंहरा

आर्य समाज व्यापुर पटना के नए पदाधिकारी

प्रधान-श्री अरूण कु० आर्य

उप प्रधान-श्री विमलेश कुमार

मंत्री-श्री सतीष हरि

उप मंत्री-श्री वुद्ध देव सिंह

कोषाध्यक्ष- श्री अजय कुमार गुप्ता

पुस्तकाध्यक्ष-श्री रौशन आर्य

अंकेक्षक-डॉ. श्री राम सिंह

thearyasamaj.org

सुशीलता का उपदेश करें।'' आगे ऋषि कहते हैं कि ''बुद्धि, वल, रूप, आरोग्य, पराक्रम, शांति आदि गुण-कारक द्रव्यों ही का सेवन स्त्री करती रहे जब तक संतान का जन्म न हो।'' ऋषि ने भी उत्तम संतति के लिये माता को ही सर्वोच्य स्थान प्रदान किया है।

ऋषि को यह विश्वास है कि माँ के संरक्षण में जो ज्ञान संतान को प्राप्त होगा वह अन्यथा कहीं नहीं क्योंकि जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुँचता है उतना किसी से नहीं। हर माता अपने संतान के बारे में अच्छा सोचती है। वह चाहती है कि हमारी संतान राम और कृष्ण जैसा बने! परन्तु वैसे सांचे में बच्चे को डाल नहीं पाते।

वर्त्तमान काल की व्यापक और गम्भीर समस्या है कि आज संतान संस्कार विहीन एवं उच्श्रृंखल होते जा रहे है। यहाँ तक कि माता-पिता का सम्मान भी नहीं करते। इसका मुख्य कारण है आज की महिलायें अपनी जीवन शैली को ही बदल डाला है। अध्यात्म को जीवन से निकाल कर भौतिकता में लीन हो पुरूषों के साथ धन कमाने में लगी हैं। गृहस्थ धर्म का स्वरूप भूलकर अपने घरों में पश्चिमी बाग लगा रही है। पाश्चात्य संस्कृति का शाल ओढ़कर गर्व का अनुभव कर रही है। सभी मर्यादाओं का अतिक्रमण कर सभ्यता और संस्कृति का विसर्जन कर रही है याद रखें भवण निर्माण, सड़क निर्माण कारखाना निमार्ण, वाहन निर्माण, बैंक वैलेंस आदि सभी प्रकार के सुख-संसाधनों का निर्माण पुरूष कर सकते हैं लेकिन संतान का निर्माण केवल और केवल माता ही कर सकती है अन्य किसी में इसकी क्षमता नहीं है।

इस लिए मातृशक्ति यह विचार करें अपने सम्पत्ति का उपभोग करने वाले संतान के निर्माण में ही अपना समय लगायें और उसे धर्म का उपदेश अवश्य दें। ऋषि ने आपकी वकालत करते हुए लिखा है कि - '' यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'' अर्थात् जहाँ नारियों की पूजा होती है वहाँ देवता वास करते हैं। आज के परिवेश में नारियों की पूजा हो इसके लिये मातृशक्ति संतति के निर्माण में अपनी भूमिका को प्रखर करें। माता ही अपने संन्तति को सदुपदेश की शिक्षा दिया करे जिससे संतान कुचेष्टा न करे।

पं० संजय सत्यार्थी
सह सम्पादक

thearyasamaj.org

आर्यसमाज के नियम

1. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदि मूल परमेश्वर है ।
2. ईश्वर सच्चिदानन्द-स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान् न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है ।
3. वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है ।
4. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये ।
5. सब काम धर्मानुसार, अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिये।
6. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।
7. सब से प्रीति-पूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य वर्तना चाहिये।
8. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।
9. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये। किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।
10. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्व-हितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये। और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

प्रेषक :
सभा-मंत्री
बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा
श्री मुनीश्वरानन्द भवन, नयाटोला
पटना-८०० ००४

मुद्रित सामग्री

सेवा में,
श्री/मेसर्स..........................
मो०..........................
पो०..........................
जिला..........................
(प्रेषिती के न मिलने पर यह अंक प्रेषक को ही लौटा दें।)

स्वत्वाधिकारी, बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा,, श्री मुनीश्वरानन्द भवन, नयाटोला, पटना-4 के लिए श्री रमेन्द्र कुमार गुप्ता (मंत्री) द्वारा जय उमा प्रिन्टर्स, पटना द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।